नई दिशाएं

•

लेखक
मनोहर छाजेर 'भारतीय'

•

भूमिका
डा० कालूलाल श्रीमाली
उपकुलपति-बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
भू० पू० शिक्षामंत्री—भारत सरकार

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा-२

स्फूर्तिदायिनी मां भारती

और

प्रेरणादायिनी गीता

को

दो शब्द

●

सिद्धान्त समय के साथ परम्परा एवं संकीर्ण मान्यताओं के घेरे में बन्दी बन गए; मानव समाज उलझ गया इन्हीं शृंखलाओं के पाश में। उसका अपने समय के अनुकूल परिस्थिति को ढालने का रुख खो सा गया, पूर्व और पश्चिम का परा और अपरा का, आचार एवं विचार का भूत एवं भविष्य का जो समन्वयात्मक चिंतन हमारी संस्कृति में था वह धुंधला गया है राष्ट्रनिर्माण की गति कुण्ठित हो चुकी है और निराशा जीवन का क्रम। अपने ही अस्तित्व एवं भावनाओं से हमारा विश्वास उठ रहा है, झूठे आदर्शों, महत्वहीन परम्पराओं की कैद भूल भुलैया में हम दिन-ब दिन फंसते जा रहे हैं।

आज प्रत्येक विषय पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार व निर्णय की अपेक्षा है। हमें विनाशक एवं निर्माणक दोनों बनना है। प्रगति सुख एवं शांति की रुकावटों को नष्ट करते हुए नई दिशाए लेकर आवश्यकताओं के अनुकूल सिद्धान्त-क्रम-सृष्टिकर्ता भी बनना है। प्राचीन एवं नवीन, पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विचारधाराओं में समन्वय की आवश्यकता है—राष्ट्र को दोनों के बीच एक रास्ता निकालना ही होगा।

अपनी संस्कृति की सुरक्षा एवं सभ्यता को गतिमान रखने के लिए 'नई दिशाए' पाठकों के हृदय को आन्दोलित कर सकी तो मैं अपने आपको कृतकृत्य समझूं गा।

कवि श्री दूबे, श्री गुप्ता, श्री कटारिया, श्री नागराज, श्री श्रीधर, श्रीमंधर श्री श्रीचन्द सुराना 'सरस' श्री ब्रह्मदेव, आदि के वैचारिक सहकार एवं अनेकों साथियों एवं विद्वानों के साथ चर्चा, विचार-विमर्श का ही परिणाम है, अस्तु उन सबका तथा सन्मति ज्ञान पीठ का और सुन्दर मुद्रक 'श्री विष्णु प्रेस' का हृदय से आभारी हूँ।

विजया दशमी, २०२६
'साहित्य सौरभ' १४, प्रथममार्ग,
नेहरूनगर, जयपुर २

—मनोहर छाबेर 'भारतीय'

प्रकाशकीय

विचारों में जब कुंठा आग्रह एव जड़ता आती है तो समाज, राष्ट्र एवं विश्व का लोकजीवन दिशाहीन जजर एवं रूढ़िग्रस्त बनकर मृत प्राय बन जाता है। यह दशा अत्यधिक चिंतनीय है। जबतक विचार जगत की यह तंद्रा एवं मूर्छा नहीं टूटेगी उसके विवेक पर से रूढ़ धारणाए एव अंधविश्वास की परतें नहीं हटेंगी तबतक जीवन में स्फूर्ति क्रांति एवं तेजस् नहीं निखर सकेगा।

जीवन की सचेतनता ही हमारी समस्त गतिविधि, प्रवृत्ति का मूलाधार है। इसी लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए हम साहित्य एवं कला का निर्माण करते हैं, जीवन की विविध विधाओं का सर्जन प्रारम्भ होता है।

सन्मति ज्ञान पीठ जीवन की इसी मौलिक सचेतनता को केन्द्र मान कर विगत २५ वर्षों से साहित्य सजना की विविध दिशाओं में सक्रिय गति कर रहा है। हमारे साहित्यिक दिशा-बोध के मूल प्रेरक हैं, श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमर मुनिजी उनके व्यापक चिंतन, मनन एवं विशुद्ध मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरणा पाकर संस्थान ने अपनी साहित्यिक प्रगति का बहुमुखी विस्तार किया है। अब तक दर्शन धम, संस्कृति, कला संगीत, कहानी जीवन-चरित्र प्रवचन,सं स्मरण आदि अनेक विषयों पर एक सौ पच्चीस से अधिक प्रकाशन संस्थान की साहित्यिक सचेतनता एवं प्रबुद्ध क्रियाशीलता का परिचायक है।

यह हर्ष का विषय है कि संस्थान अपनी साहित्यिक एवं राष्ट्रीय चेतना को जन-जन में जागृति करने की दिशा में एक और नया प्रकाशन'नई दिशाए' पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में धर्म, समाज एवं राष्ट्र के ज्वलन्त युगीन प्रश्नों पर बड़ी पैनी एवं तर्कपूर्ण दृष्टि से चिंतन प्रस्तुत किया है,

राष्ट्रीयचेतना एवं धार्मिक उदारता को कुण्ठित करने वाली रूढ़िया अन्धविश्वास एवं अविवेक पूर्ण रीतियों पर समाज में गहरी चोट के साथ उनको नया दिशा-दर्शन देने की ओर स्पष्ट संकेत किए हैं। कई दृष्टियों से पुस्तक अपने आप में महत्वपूर्ण एवं मौलिक होने के साथ राष्ट्रीय जीवन को 'नई दिशाए' देने वाली है।

पुस्तक के लेखक श्री मनोहर खाजेर 'भारतीय मूलत' राजस्थान वासी होते हुए भी दक्षिण भारत की हिन्दी संस्थाओं के प्रेरक संचालक एवं संस्थापक है तथा राष्ट्रीय चेतना के सजग प्रहरी। दक्षिण में 'बैंगलोर हिन्दी फोरम' की स्थापना इन्हीं के प्रयत्नों का सुपरिणाम है, जो हिन्दी-अहिन्दी क्षेत्रों में राष्ट्र भाषा के माध्यम से अनवरत राष्ट्रीय चेतना का एक सफल मंच बन रहा है।

हम महान शिक्षाविद् आदरणीय डा० श्रीमाली जी (उपकुलपति बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय पू० पू० शिक्षामंत्री भारत सरकार) का हार्दिक आभार मानते हैं, जिन्होंने इतने व्यस्त एवं अल्प समय में ही महत्वपूर्ण भूमिका लिखकर अनुग्रहित किया है।

हम आशा करते हैं कि प्रस्तुत कृति हमारे विज्ञ पाठकों को अत्यधिक रुचिकर एवं दिशादर्शक लगेगा, व इसको अधिकाधिक अपनाकर उत्साहित करेंगे।

मन्त्री

सन्मति ज्ञानपीठ आगरा

भूमिका

साहित्य के माध्यम से नवीन क्रान्तियां जन्म लेती हैं यह निर्विवाद है। समाज जैसे साहित्य की अपेक्षा करता है—वैसे ही उसका स्व-निर्माण होता है। साहित्य की विषय सामग्री जब कोमल मस्तिष्क में समाहित होकर परिपक्वता की ओर अग्रसर होती है तब जीवन का मूर्त-रूप उसमे प्रतिबिम्बित हो उठता है। नई-दिशाएं" प्रबुद्ध पाठकों के मार्ग-दर्शन में सहायक बनें, इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर लेखक ने अपने क्रान्तिकारी विचारों को लिपिबद्ध किया है। अतीत से भविष्य तक की यह विचारों की दौड़ इस प्रकार पुष्पित हो उठी है, मानो लेखक ने भारतीय समाज के मृदु एवं कटु सत्य को अपनी कुशल लेखनी द्वारा निर्भीकता के साथ व्यक्त करने का बीड़ा-सा उठा लिया हो। साहित्य-सृजन की यह शैली अपने में एक विचित्रता संजोए हुए है।

हिमालय से सागर की लहरों तक' शीर्षक से जिस भारत का चित्रण किया गया है वह नया नहीं है परन्तु लेखक की विचार-तरंगों ने उसे जिस ढंग से प्रस्तुत किया है वह अद्‌भुत ही माना जाएगा। प्रस्तुत विचारों का तुलनात्मक ढंग से मूल्यांकन किया जाए तो लगेगा भारतीय समाज प्रगति के देहलीज पर खड़ा रहकर भी किंकर्तव्यविमूढ़ बन गया है। वस्तुतः स्थिति यह है कि उसे नई दिशा का सही उद्‌बोधन नहीं मिल पा रहा है।

o 'जिओ और जीने दो!' सादा जीवन उच्च विचार!' सत्यं सारभूमम्! 'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'असतो मा सद् गमय तमसो मा

ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतम् गमय' के पावन सिद्धान्तों का प्रहरी भारत अपनी अनोखी परम्पराओं मान्यताओं के इन्द्रधनुषी रंगों और आदर्शों का धनी रहा है। इन सबका प्रतीक राष्ट्रीय तिरंगा ध्वज ससम्मान फहरा रहा है। आज भी जब रणभेरी बजती है तो देश का हर नागरिक किसी न किसी तरह देश की रक्षा के पुनीत कार्य में अपने आपको जोड़ लेता है।"

'पुरखों के स्वप्नों का भारत किस ओर।' लेखक की कल्पना शक्ति ने इस आंधी और तूफान का रूप दे दिया है जो पाठक के हृदय को झकझोर दे। जगह-जगह पृष्ठों पर पाठक को लगेगा जैसे वे निर्माण और ह्रास की आंख मिचौनी देख रहे हों। परन्तु वास्तविक स्थिति में यह समाज की चुनौती है 'नई दिशाएं' समस्त राष्ट्रीयों के लिए।

"यद्यपि विकास के नाम पर पिछले बीस वर्षों से बड़े कारखानों इस्पात जल जहाजों विमानों विद्युत एवं अनेकानेक उद्योगों को प्रतिष्ठित किया गया है। समाज में उत्पादन और वितरण के अप्रिय कदम उठाए गए हैं। फिर भी विकास अपना लक्ष्य न पा सका। धनी अधिक धनी गरीब अधिक गरीब बने हैं। जीवन के अनावश्यक संघर्ष में श्रम, धन समय का अपव्यय किया है। चारित्रिक पतन और भ्रष्टाचारों के ह्रास की बढ़ती हुई स्थिति देश के लिए चिन्ता का विषय बन गई है। सामाजिकता तथा अनुशासन के अभाव की आंधी सी आगई है। सर्वत्र अराजकता ने अपना जाल फैला दिया है। क्या संघर्ष पुरखों का बलिदान जनता का त्याग इसी दिन के लिए था?

आद्योपान्त पुस्तक में कब भी ऐसा ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता, जहाँ निर्भीकता और सत्य से हटता हुआ लेखक लगता हो। हाँ यह अवश्य है कि कहीं-कहीं विषय को संक्षिप्त कर दिया गया है। लगता है लेखक का ध्यान पुस्तक के कलेवर वृद्धि की ओर रहा हो। लेखनी स्वयं अनमोली-सी लगती है। प्रारम्भ में विषय को जितना विस्तार दिया

गया है अन्त में वसा नहीं पर थोड़े शब्दों में भी वह इतना विस्तृत-सा जान पड़ता है मानो 'गागर में सागर' भर दिया गया हो।

विविध शीर्षकों के माध्यम से जैसे हिमालय से सागर की लहरों तक, 'पुरखों के स्वप्नों का भारत किस ओर!' राष्ट्र निर्माण की बुनियाद धर्म' सामाजिक सिद्धान्तों का आग्रह नहीं, विवेक हो', आर्थिक नीति देश की आवश्यकता के अनुरूप हो' 'राजनीति को व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठना होगा! राष्ट्र की समृद्धि में राष्ट्रवासियों का किस प्रकार का सहयोग अपेक्षित है यही चित्रित किया गया है। लेखनी पूर्ण रूप से मजी हुई लगती है।

प्रस्तुत हैं कुछ ऐसे उद्धरण जिससे पुस्तक का परिचय स्वतः मिल जाएगा—

● 'विशालकाय राजभवन, दीर्घकाय जल स्रोत बड़े लम्बे-लम्बे रेल मार्ग यातायात के आधुनिकतम प्रचुर साधन मिलें और कारखानें अन्नोत्पादन के क्षेत्र में आधुनिक उपकरणों का योग शिक्षा के क्षेत्र में नवीन दिशा एक ओर विकास के मार्गों को जहाँ प्रशस्त किया गया है वहीं अराजकता हड़तालें अनुशासन-हीनता ने देश की आत्मा को ही झकझोर डाला है स्वतन्त्रता के नाम पर कानून के जो बन्धन ढीले किए गए लोग स्वच्छन्द बनने लगे।

● शारीरिक गुलामी न सही पर मानसिक गुलामी आज भी हमारे विचारों पर हावी है अपने अस्तित्व और भावनाओं से हमारा विश्वास उठ-सा रहा है सत्य वही लग रहा है जो सदियों से चला आ रहा है, समर्थन उसी को मिल रहा है जो प्राचीन है प्रशंसा उसी की हो रही है जो परम्परानुगत स्वर में गा रहा है।

● देश उतार-चढ़ाव के तूफान से गुजर रहा है। जिस धरती पर घी-दूध की नदिया बहती थीं जहाँ कृषक हजारों लाखों को रोटी देने वाला था, आज स्वयं भूखे पेट सोता है। सैकड़ों को गर्मी सर्दी वर्षा

ज्योतिगमय मृत्योर्मा अमृतम् गमय' के पावन सिद्धान्तों का प्रहरी भारत अपनी अनोखी परम्पराओं मान्यताओं के इन्द्रधनुषी रंगों और आदर्शों का धनी रहा है। इन सबका प्रतीक राष्ट्रीय तिरंगा ध्वज गगनमान फहरा रहा है। आज भी जब रणभेरी बजती है तो देश का हर नागरिक किसी न किसी तरह देश की रक्षा के पुनीत कार्य में अपने आपको जोड़ लेता है।

'पुरखों के स्वप्नों का भारत किस ओर !" लेखक की कल्पना शक्ति ने इसे आंधी और तूफान का रूप दे दिया है जो पाठक के हृदय को झकझोर दे। यत्र-तत्र पृष्ठों पर पाठक को लगेगा जैसे वे निर्माण और ह्रास की आँख मिचौनी देख रहे हों। परन्तु वास्तविक स्थिति में यह लेखक की चुनौती है नई दिशाएं समस्त राष्ट्रीयों के लिए।

"यद्यपि विकास के नाम पर पिछले बीस वर्षों से कल कारखानों इस्पात जल-जहाजों विमानों विद्युत एवं अनेकानेक उद्योगों को प्रतिष्ठित किया गया है। समाज के उत्पादन और वितरण के मनिय कदम उठाए गये हैं। फिर भी विकास अपना गन्तव्य न पा सका। धनी अधिक धनी, गरीब अधिक गरीब बने हैं। जीवन के अनावश्यक संघर्ष मे जन धन समय का अपव्यय किया है। चारित्रिक पतन और सुसंस्कारों के ह्रास की बढ़ती हुई स्थिति देश के लिए चिन्ता का विषय बन गई है। प्रामाणिकता तथा अनुशासन के अभाव की आंधी सी आगई है। सर्वत्र अराजकता ने अपना जाल फैला दिया है। क्या संघर्ष पुरखों का बलिदान जनता का त्याग इसी दिन के लिए था ?

आद्योपान्त पुस्तक में एक भी स्थल ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता, जहाँ निर्भीकता और सत्य से हटता हुआ लेखक लगता हो। हाँ, यह अवश्य है कि कहीं-कहीं विषय को संक्षिप्त कर लिया गया है। लगता है लेखक का ध्यान पुस्तक के कलेवर वृद्धि की ओर रहा हो। लेखनी स्वतः चलती-सी लगती है। प्रारम्भ में विषय को जितना विस्तार दिया

गया है अन्त में वैसा नहीं पर थोड़े शब्दों में भी वह इतना विस्तृत-सा जान पड़ता है मानो 'गागर में सागर' भर दिया गया हो।

विविध शीर्षकों के माध्यम से जैसे हिमालय से सागर की लहरों तक, 'पुरखों के स्वप्नों का भारत किस ओर!' 'राष्ट्र निर्माण की बुनियाद धर्म' सामाजिक सिद्धान्तों का आग्रह नहीं विवेक हो','आर्थिक नीति देश की आवश्यकता के अनुरूप हो' 'राजनीति को व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठना होगा! राष्ट्र की समृद्धि में राष्ट्रवासियों का किस प्रकार का सहयोग अपेक्षित है यही चित्रित किया गया है। लेखनी पूर्ण रूप से मजी हुई लगती है।

प्रस्तुत हैं कुछ ऐसे उद्धरण जिससे पुस्तक का परिचय स्वत मिल जाएगा—

● "विशालकाय राजभवन, दीर्घकाय जल स्रोत बड़े लम्बे-लम्बे रेल मार्ग यातायात के आधुनिकतम प्रचुर साधन मिलें और कारखानें अन्नोत्पादन के क्षेत्र में आधुनिक उपकरणों का योग शिक्षा के क्षेत्र में नवीन दिशा एक ओर विकास के मार्गों को जहाँ प्रशस्त किया गया है वहीं अराजकता हड़तालें अनुशासन-हीनता ने देश की आत्मा को ही झकझोर डाला है, स्वतन्त्रता के नाम पर कानून के जो बन्धन ढीले किए गए लोग स्वच्छन्द बनने लगे।"

● शारीरिक गुलामी न सही पर मानसिक गुलामी आज भी हमारे विचारों पर हावी है अपने अस्तित्व और भावनाओं से हमारा विश्वास उठ-सा रहा है सत्य वही लग रहा है जो सदियों से चला आ रहा है समर्थन उसी को मिल रहा है जो प्राचीन है प्रशंसा उसी की हो रही है जो परम्परागत स्वर में गा रहा है।

● देश उतार-चढ़ाव के तूफान से गुजर रहा है। जिस धरती पर घी-दूध की नदियां बहती थीं, जहाँ कृषक हजारों लाखों को रोटी देने वाला था आज स्वयं भूखे पेट सोता है। सैंकड़ों को गर्मी सर्दी वर्षा

से बचाने वाले भवन निर्माता स्वयं झुग्गी-झोपड़ियों में अपना जीवन काटते हैं। लाखों-करोड़ों को वस्त्र देने वाले शरीर जो कभी मिलों, वस कारखानों एवं करघों पर थकते नहीं स्वयं फटे-पुराने चिथड़ों में लिपटे रहते हैं। लाखों-करोड़ों को काम देकर सुख की नींद सुलाने वाला स्वयं कठिनाई से सो रहा है। न अट्टालिकाओं में रहने वाला सुखी है और न कुटिया में रहने वाला ही।

● आज राष्ट्र चाहे जैसा भी है, अपना है। इसे बनाने, सजाने, संवारने गढ़ने की अपेक्षा है।

● दोष धर्म का नहीं धर्म के तथा कथित ठेकेदारों का है अस्पृश्यों को मन्दिरों ने नहीं मन्दिर के पुजारियों ने उपेक्षा की है भगवान ने नहीं उनके भक्तों ने उन्हें दूर रखा है, धर्म ने नहीं उनके संकीर्ण पोषकों के मन में बसने वाली संकीर्णता ने उन्हें ठुकराया है।

● सत्य की खोज में निकला मानव धर्म एवं जाति की भेद की रेखाओं में उलझ कर रह गया है। सम्प्रदाय एवं जाति के दायरे में साध्य सत्य को पाने की चाह रखने वालों को शरीर के दर्शन हो सकते हैं आत्मा के नहीं।

● आज प्राचीन एवं नवीन में समन्वयीकरण की अपेक्षा है। परम्परा से प्राप्त मान्यताओं को तर्क की कसौटी पर कसने की आवश्यकता है। सीमित दायरों से ऊपर उठने की अपेक्षा है धर्म को पुरातनों मन्दिरों, मस्जिदों मठों और धर्माचार्यों की कैद से ऊपर उठकर व्यवहार का विषय बना देश हित के अनुकूल अपनी भूमिका अदा करनी है। यदि समय रहते ऐसा न किया गया तो आने वाली पीढ़ी धर्म को मात्र ढकोसला कह कर मजाक उड़ायेगी।

● पथिक अपने पथ पर चल तो रहा है किन्तु उसे अपने गन्तव्य का पता नहीं मनुष्य जी अवश्य रहा है किन्तु उसे नहीं मालूम क्यों जी रहा है? जीने के लिए जीना या किसी उद्देश्य के लिए जीना

इसकी भेद रेखा को जब तक मानव पहचानेगा नहीं, तब तक सुख उसके लिए मृग-मरीचिका ही रहेगी।

● मानसिक दासताओं में पला व्यक्ति परम्परा का पोषण कर सकता है और कुछ नहीं। जाति भेद साम्प्रदायिकआग्रह, अनेकानेक व्यर्थ परम्पराएँ सदियों से इसलिए चलती आ रही हैं कि नवीन पीढ़ी पर मानसिक दासता को थोप दिया गया इन्हीं संस्कारों को संस्कारित किया गया है। आज उस रेखा से ऊपर उठकर कोई देखना नहीं चाहता उस बन्धन से मुक्त होकर कोई नवीन चिन्तन नहीं चाहता विरासत में प्राप्त कैद से छूट कर कोई नई दिशा नहीं चाहता।

● समाज उनके थोप-मात्र बूझता है, भूल जाता है कि विवशता भी कोई चीज है मनुष्य हृदय युक्त प्राणी है पत्थर की मौन प्रतिमा नहीं।

हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि हमारी स्वतन्त्रता की कहानी चन्द लोगोंके बलिदान की ही नहीं अपितु समग्र भारतीय जनता के सहकार सहयोग और बलिदान की कहानी है। हमारे देश की रक्षा देश का निर्माण देश के गौरव की लाज और देश की स्वतन्त्रता को रखना भी हमारे सामूहिक सहकार पर निर्भर है। कौन राज्य करता है? इससे अन्तर नहीं पड़ता यदि देश का प्रत्येक नागरिक अपने कर्तव्य से विमुख न हो। सरकार को जनता के सहयोग की अपेक्षा है और जनता को नेक नेताओं की। राजनीति रामनीति बने साम्प्रदायिक प्रान्तीय, वर्गीय भाषाई वैयक्तिक संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठा जाए। राष्ट्रहित ही हमारा धर्म हो मानव-मानव में प्रेम हमारा लक्ष्य।

श्री मनोहर खाबेर 'भारतीय' एक प्रतिभाशाली उदीयमान साहित्यकार, लेखक व कवि हैं। इनकी लेखनी विशेषकर क्रान्तिकारी परिवर्तनों की ओर द्रुतगति से बढ़ती है। इसके पूर्व 'आप से कुछ कहना है' एक महत्वपूर्ण कृति प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष रख चुके हैं। यद्यपि आपकी शिक्षा-दीक्षा दक्षिण अचल मे ही हुई, फिर भी आपने लिख गए

विचारों से लगता है कि उत्तर भारत की भाषा हिन्दी के आप प्राण हैं। पुस्तक को पढ़ते हुए आप पायेंगे कि लेखक समस्या के ऊपरी धरातल पर ही नहीं, उसके अन्तराल तक पहुँचा है। कहीं-कहीं ऐसा भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह भाषा नहीं लेखक के हृदय की तड़फ-स्पंदन बोल रही है लेखक नवीन के द्रुतगामी बहाव में बहा भी नहीं है। उसने नए मूल्यों की स्थापना की जहाँ चर्चा की है, वहीं प्राचीन ग्राह्य मूल्यों की रक्षा पर भी बल भी दिया है, भूत एवं भविष्य का सुन्दर समन्वय भी।

जहाँ तक मेरा ध्यान है समाज ऐसे साहित्यों की कद्र करेगा, जिससे प्रोत्साहन पाता हुआ लेखक आगे से आगे साहित्य के माध्यम से देश-सेवा की भावना दृढ़ करता रहेगा। श्री सन्मति ज्ञान पीठ आगरा इस क्रान्तिकारी साहित्य के प्रकाशन के लिए बधाई का पात्र है। लेखक, प्रकाशक के साथ हमारी हार्दिक शुभ कामनाएं।

१ नवम्बर १९६९ — डॉ० के० एस० श्रीमाली

वाराणसी (उ० प्र०) — उपकुलपति, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

अनुक्रम

नई दिशाएं

हिमालय
से
सागर की लहरों तक

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयज-शीतलां
शस्यश्यामलां मातरम्
शुभ्रज्योत्सना-पुलकितयामिनीं
फुल्ल कुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीं
सुहासिनी सुमधुरभाषिणीं
सुखदां वरदां मातरम्

भारत की चर्चा करते हुए विदेशी दार्शनिक प्रोफेसर मैक्समूलर ने लिखा है—'If I were to look over to the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty that nature can bestow in some parts a very paradise on earth I should point to India. If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts has most deeply ponderd on the greatest problems of life, and has found solution of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and

Kanta I should point to India And if I were to ask myself from which literature we have in Europe we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks and Romans and one of the semetic race Jewish may draw that corrective which is most wanted to make our comprhensive, more universal in-fact more truly human, a life not for this life only, but a transfigured and eternal life—again I should point to India.'

—Prof. Maxmuller

'यदि मुझे सम्पूर्ण संसार में किसी ऐसे प्रदेश को ढूंढना हो—जो प्रकृति-प्रदत्त सुन्दरता का आगार, संपदा का धनी शक्ति-सम्पन्न प्रदेश हो तो मैं भारत की ओर संकेत करूँगा। यदि मुझसे पूछा गया कि किस नीले गगन के नीचे मानव-मस्तिष्क का सम्पूर्ण विकास हुआ है, बुद्धि ने परिपूर्णता प्राप्त की है, जिसने जीवन के कठिनतम अध्यायों का गहरा अध्ययन कर उसका समाधान दिया है—प्लेटो और कान्ट को जिन्होंने पढ़ा है, उनका भी ध्यान आकर्षित करने में समर्थ है, तो मैं भारत' का ही नाम लूंगा। यदि मुझे स्वयं को भी पूछना है कि हम योरोप प्रदेश के व्यक्ति, जिनका साहित्य अधिकतर ग्रीक और रोमन के विचारों से प्रभावित रहा है जिससे अपने आन्तरिक जीवन को परिपूर्ण पर्याप्त, विश्वमान्य तथा सच्चे, अर्थों में मानवीय सद्गुणों से युक्त एक ऐसा जीवन बनाने में समर्थ हों, जो जीवन, मात्र जीने की चाह के लिए ही नहीं, अलौकिक एवं आध्यात्मिक जीवन को भी समृद्ध बनाने में समर्थ हो तो इस समर्थता के लिए मुझे फिर 'भारत' की ही ओर संकेत करना होगा।"

—यह है एक विदेशी साहित्यकार की भारत के विषय में मान्यता भारतीय प्राकृतिक निधि, भारतीय वैभव भारतीय संस्कृति

सभ्यता, साहित्य, तथा श्रम-जीवन के प्रति अपनी आस्था। यह वर्णन किसी देशवासी ने अपने देश के गौरव के लिए नहीं, अपितु एक दूसरे राष्ट्र के प्रमुख व्यक्ति ने अन्य राष्ट्र के विषय में कहा है—यह भारत के गौरव पूर्ण इतिहास का विषय है।

भरत खण्ड आर्यावर्त, भारत भारतवर्ष, हिन्दुस्थान तथा INDIA आदि नामों से सम्बोधित इस धरा के कण-कण में सौरभ, सुषमा सौन्दर्य एवं संगीत स्वर इसकी आत्मा में ममत्व माधुर्य तथा आकर्षण, इसकी संस्कृति में वैभव, वीरता त्याग एवं बलिदान का सौष्ठव ऐसी भूमि जहाँ का चप्पा चप्पा विगत के उन शूरवीरों के खून से सिंचित है, जिसने अपने देश धर्म की मर्यादा के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया वह जौहर तथा स्वाभिमान की भूमि—जहाँ की देवियों ने अपने सतीत्व एवं आदर्श की रक्षा के लिए अपने आपको धधकती ज्वालाओं में झोंक दिया वह त्याग एवं नीति की भूमि—जहाँ के शासकों ने स्वयं को जनसेवक मानकर विश्व-प्रेम की भावना को प्रसारित किया, जो न्याय तथा प्रजापालन की भावना से आप्लावित थे वह ममता सौहार्द, एवं वात्सल्य की भूमि—जिसने अपने-पराए की भेद रेखा को लांघ कर आश्रित को भी प्यार दिया वह धर्म तथा त्याग की भूमि—जिसने सब कुछ समता से सहा वह त्यागियों की भूमि—जिसने एक लंगोटी और कोपीन के बल पर सम्पूर्ण विश्व को आकर्षित किया वह ज्ञान ध्यान तथा दर्शन की भूमि—जहाँ के ऋषि-मुनियों ने विश्व का मार्ग-दर्शन किया वह सभ्य सुसंस्कृत भूमि जिससे विश्व ने मानवता का पाठ पढ़ा था; वह आचार-विचार के समानता की प्रसूता भूमि—जहाँ कथनी-करनी में अन्तर न होता था, वह श्रमिकों और कृषकों की भूमि—जिसने सर्वदेशीय विकास में अपना योग दिया—देश को रोटी तथा विश्व को उद्योग दिया, अभाव में भी प्रसन्नता जिसकी सहगामी थी वह कला-साहित्य की भूमि—जिसने अपनी आँचल में अतीत की गरिमा को संजोए रखा विस्मृत को

स्मृति का विषय बना अपने गौरवपूर्ण विगत के इतिहास को अमर बना दिया वह आदर्श पूर्ण अतीत—जिसने प्रगतिमय वर्तमान को राह दी और भविष्य को एक आशा !

अस्तु, प्रो० मैक्समूलर का कथन आश्चर्य और अतिशयोक्ति का विषय न होकर सहज सत्य का विवेचन है।

प्राकृतिक सौन्दर्य का अनुपम देश, रेतीले और पथरीले वन के बीच हरे-भरे मैदान छोटे बड़े वृक्ष, कहीं रेगिस्तान के रेतीले महासागर तो कहीं विशाल सुदूर तक फैली पर्वत श्रेणियां उनसे निकलते हुए झरनों का कल-कल नाद नदियों का वेग, सागर की शान्ति, ३२,७६ १४६ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का अपने ढंग का विश्व में एक ही प्रदेश प्राकृति-परिधानों से आभूषित भारत प्रकृति प्रेमियों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र रहा है। उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई हिमालय की उत्तुंग शृंग मालाएं जिसके हिमाच्छादित शिखर माँ भारती के रत्न जड़ित मुकुट की भांति मेघाच्छन्न छत्र ऐसे सुशोभित हैं—मानो विश्व मोहनी आभा अपनी छटा से विश्व को तृप्ति प्रदान कर रही है। शिखर से नीचे की पर्वत शृंखलाओं में पादप गण—नभ को छूने की धुन समाए हरे भरे अशोक, शीशम एवं देवदारु वृक्ष की पंक्तियाँ पर्वतों में जन्म लेकर वंशानुक्रम से प्राप्त शीतलता से पुष्ट कल कल नाद कर मदमस्त उतरने को कहीं सरोवर बन कर स्थिर हो गए हैं तो कहीं सतत बहने की गति लिए सरिताओं में बदल गए हैं। इन्हीं के जीवन से जीवित पुष्पवाटिकाएं इन घाटियों की सुन्दरता एवं सुषमा बनी हुई हैं।

हिमालय की पर्वत श्रेणियों से जन्म लेने वाली सिन्धु, गंगा, यमुना ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ अनाय जल शक्ति को अपने में समाए जीवन रस को प्रवाहित करती हुई ऐसे लगती हैं जैसे माँ भारती अपने वक्ष में अपने सुत का दूध संजोए हों और वह जीवन रस समस्त भारतीयों के लिए अनन्त से प्रवाहित हो रहा हो।

तलहटी में बसे बिखरे गाँव, चलता-फिरता काफ़िला (कारवाँ), भेड़-बकरियों के झुण्ड और उन्हें चराती ग्रामीण भोली बालाएँ यौवन की मादकता में विभोर, सुगठित शरीर की गौरवर्ण सुन्दर युवतियाँ श्रमशील हृष्टकाय पर्वतीय पुरुषों को देखकर लगता है विधाता की सम्पूर्ण कारीगरी यहीं उमड़ पड़ी है। हिमालय से सागर तक प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण भारत की अनुपम छटा यहाँ के जन जीवन की कला संस्कृति, साहित्य अतीत के वैभव और गौरव का जीता-जागता उदाहरण है।

धरती पर प्राकृतिक सुन्दरता का सबसे अधिक सुन्दर-स्वरूप 'काश्मीर'! फूलों से आच्छादित उद्यान फल भार से झुकी वृक्ष-टहनियाँ, हरी भरी मखमली धरती मन्द-मन्द शीतल सुगन्धित समीर पक्षियों का पेड़ों के झुरमुट से निकलता कलरव, शृंगार प्रिय नारियों की रूप माधुरी, हृष्टपुष्ट पुरुष चंचल चपल बालक, बालिकाएँ आदि ने सचमुच काश्मीर को धरती का स्वर्ग' बना दिया है'।

मुगल बादशाह बाबर ने काश्मीर की सुन्दरता का वर्णन करते हुए लिखा है —

'अगर फिर दौस बरू ए जमीं अस्त,
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त।"

'—अगर धरती पर कहीं स्वर्ग है तो वह यही है वह यही है, वह यही है।"

निशात' और 'शालीमार' उद्यान उन पर बिछी मखमली घासें हिमालय से घिरी 'डल लेक' यत्र-तत्र सुन्दरता से सजे शिकारें, पर्वतीय पर्थो पर विखरित केसर का सुगन्धमय पराग कल-कल नाद करते झरने बर्फ से ढके पर्वतों के बीच का विश्राम-स्थल 'गुलमर्ग' १५ ००० फीट की ऊँचाई पर 'अल पत्थर लेक' श्रीनगर से दूर, मैदान एवं सरिताओं के सौन्दर्य से पूरित 'सोन मार्ग तथा 'पहलगांव' आदि ने काश्मीर की अनुपम छटा को अलौकिक बना दिया है।

सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में काश्मीर सदैव प्रगतिशील रहा है। यहाँ के प्रशासक कला और साहित्य के संरक्षक माने जाते थे। यही कारण था कि काश्मीर संस्कृत साहित्य एवं बौद्ध-दर्शन का वर्षों तक प्रमुख केन्द्र रहा, 'अमरकोश' के रचयिता सोमेन्द्र 'राजतरंगिणी' के लेखक कल्हणमिश्र का नाम काश्मीर की संस्कृति के साथ जुड़ा हुआ है।

सन् १९४७ तक काश्मीर विदेशी शासन के अन्तर्गत रहा। स्वतन्त्रता के साथ-साथ साम्प्रदायिकता का आश्रय लेकर पाकिस्तान नामक अलग राष्ट्र का निर्माण हुआ। फलतः काश्मीर भारत का अभिन्न अंग होते हुए भी विवादास्पद मामलों में उलझ गया और वहाँ की शान्तिप्रिय जनता में संकट पूर्ण स्थिति बनी। प्रारम्भ में भारतीय शासकों ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया किन्तु अमानुषिक अत्याचारों से पीड़ित जनता की पुकार से वरिष्ठ अधिकारियों का ध्यान इस ओर गया। परिणाम स्वरूप भारतीय सैनिकों के अभूतपूर्व पराक्रम वीरता बलिदान व साहस से लगभग १०००० वर्गमील के विस्तृत क्षेत्र को दस्युओं से मुक्त कराया। भारतीय संस्कृति सभ्यता, कला आज भी काश्मीर में जीवित है।

प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से काश्मीर के पश्चात् हिमाचल प्रदेश का नाम लिया जा सकता है। यह हिमालय की तराई में बसा सुन्दर प्रदेश है। यातायात के समुचित साधनों के अभाव में इस प्रदेश का सम्बन्ध कोलाहल पूर्ण नगरों से प्रायः नहीं के बराबर था किन्तु पिछले १० वर्षों से इस छोटे प्रदेश ने आशातीत प्रगति की है। निर्जन और दुरूह पहाड़ों को काट-छाँट कर सड़कों का निर्माण किया गया हिमालय-तिब्बत मार्ग इस का स्पष्ट प्रमाण है अब यह क्षेत्र सुगम साधनों द्वारा बहुमुखी प्रगति कर रहा है। कृषि कार्य वास्तव में सुधार प्रणाली द्वारा विशेष उन्नति कर रहा है। अंगूर, सेब, स्ट्राबेरी तथा विविध प्रकार के मेवे आदि की उत्पत्ति से लगता है यह प्रदेश शीघ्र ही स्वावलम्बी बनकर धन-सम्पन्न हो जाएगा। 'शिमला' 'चाइल',

'वस', 'कासूली', ५५०० फुट की ऊँचाई पर 'नला वेरा' लगभग ६००० फुट की ऊंचाई पर 'नार काड़ा', चम्बा नदी पर झूमता हुआ पुल चम्बा का मन्दिर झरनों के कल-कल नाद बाँसुरी की मधुर तान त्योहारों की धूम, देव पूजा नृत्य लीला यहाँ के प्रमुख आकर्षण हैं।यदि प्रगति का यही विकास क्रम रहा तो निश्चित ही हिमाचल प्रदेश काश्मीर के बाद धरती का दूसरा स्वर्ग होगा।

प्राचीन परम्परा को मान्यता प्रदान करने वाला यह प्रदेश अपने में न जाने कितना गूढ़ रहस्य छिपाए हुए है। यहाँ का अधिकांश भाग कृषि तथा वन्य-पदार्थों पर निर्भर है। दैनिक क्रियाओं में इष्ट देवों की उपासना प्रमुख है। यहाँ के निवासी नीरोग प्रसन्न मुद्रा, परिश्रमी, हृष्टपुष्ट तथा अनपढ़ होते हैं। परन्तु अब यहाँ भी शिक्षा का प्रचलन तीव्र गति से हो रहा है। संस्कृति और सभ्यता के क्षेत्र में प्राचीन वेश भूषा पहाड़ी नृत्य एवं संगीत तथा निवासियों में बहुपति प्रथा' आज भी प्रचलित है।

हिमाच्छादित प्रदेश काश्मीर की तराई में बसा—वीर प्रदेश है—पंजाब। [पंच+आब]

'सतलज झेलम, व्यास अरु रावी और चिनाव।
इन पाँचों के दरम्याँ, बसा मुल्क पंजाब ॥

विभाजन के पूर्व पंजाब काफी लम्बे क्षेत्र में फैला हुआ था। इसका बहुत बड़ा क्षेत्र सिन्ध, पाकिस्तान बन चुका है। अभी कुछ दिनों पूर्व बचे हुये भाग को भी भारतीय सरकार ने दो भागों में विभक्त कर दिया— हरियाणा प्रान्त और पंजाब प्रान्त।

भारतीय इतिहास में पंजाब अपना विशिष्ट स्थान रखता है। पहाड़ी प्रदेश से निकट होने के कारण शीतलता यहाँ की विशेषता और नदियाँ यहाँ की शोभा है। अनुकूल मौसम, उचित पानी उर्वरा भूमि के संयोग से यह प्रदेश फलों का राज माना जाता है। कृषि

सम्पन्न प्रदेश की मुख्य उपज गेहूँ है। भाखड़ा बाँध से सिंचित यह प्रदेश हरियाली से भरपूर रहता है। योजनाओं की प्रगति ने यहाँ के देहाती क्षेत्रों को भी विद्युत् और पक्के मार्गों से संपन्न कर दिया है।

अतीत में पंजाब प्रान्त संघर्षों की भूमि रही है। ईरान के साईरस तथा सिकन्दर का आक्रमण, मुगल सुल्तानों का आक्रमण, अंग्रेजी शासकों के विरुद्ध क्रान्ति से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। सिक्ख मत के संस्थापक गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह, और पंजाब के सिंह सरदार रणजीतसिंह, पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय, शहीद भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानियों की प्रसूता पंजाब भूमि ही रही है। अमृतसर का जलियांवाला बाग भारतीय राष्ट्र प्रेम और बलिदान का अमर स्मारक बन गया है।

विभाजन की संकटापन्न स्थिति ने यहाँ के अधिकांश निवासियों को घर-बार छोड़ कर अन्यत्र बस जाने पर मजबूर कर दिया। जिस दृढ़ता और धैर्य से पंजाबियों ने इस विकट परिस्थिति का सामना किया और अन्यत्र बस कर अल्पकाल में ही स्वावलम्बी बन गए, वैसा उदाहरण विश्व के इतिहास में अत्यन्त दुर्लभता से ही उपलब्ध होगा। पराक्रम और परिश्रम इनका आदर्श रहा है। यहाँ के सुदृढ़ पुरुष एवं सुगठित महिलाएँ धर्म-परायण होती हैं। पंजाबी भाषा उर्दू एवं फारसी से अधिक प्रभावित रही है। आज भी यहाँ के निवासी उर्दू का अधिकतर प्रयोग करते देखे जाते हैं। साहित्य एवं कला संस्कृति में भी पंजाब प्रान्त का भाग आदर से लिया जाता रहा है। यहाँ का और रंग पूर्ण भांगड़ा नृत्य जगत प्रसिद्ध अमृतसर का स्वर्ण मन्दिर, संस्कृति व कला का उत्कृष्ट नमूना है तो नव निर्मित राजधानी चण्डीगढ़ विदेशी निर्माण कला का नमूना। जन्मभूमि प्राप्त छोड़कर शरणार्थी के रूप में आने वाले इस प्रान्त के युवक युवतियाँ बड़े बूढ़े बच्चे, सभी श्रम द्वारा धनोपार्जन कर स्वावलम्बी बनने का यत्न

देखने लगे। 'उद्योगे वसति लक्ष्मी' की उक्ति चरितार्थ हुई और देखते-देखते यह काफी आगे बढ़ गए। आज भारत के सभी स्थानों पर ये समान नागरिक के रूप में अपनी जड़ जमा चुके हैं। वेश भूषा में अन्तर रहते हुए भी वे जहाँ बस गए है, वहीं के हो गए। इस तरह की वृत्ति देश की संगठनात्मक तथा भावात्मक एकता मूलक शक्तियों को साकार करने में आशातीत सफलताएँ प्राप्त करेगी।

कृषक बालाओं के मधुर गीतों की धुन, घुंघरुओं की झनकार भूमि के कण-कण से प्रस्फुटित रण भेरी की गूँज सुनी जा सकती है वीरों की धरती 'राजस्थान' में। पंजाब से सटा राजस्थान जिसके विशाल वक्ष पर फैला रेगिस्तान, एक ओर अरावली की पर्वत श्रेणियाँ यत्र तत्र बबूल एवं खेजड़े के वृक्ष भयंकर ताप में भी जिनके अस्तित्व को कोई खतरा नहीं रहता, कहीं सुन्दर सुसज्जित महल तो कहीं प्राचीन किलों की भग्न दीवारों के अवशेष, उन बहादुर राजपूत वीरों की वीरता भरी गाथाएँ अतीत के गौरव की याद दिला रही हैं। कर्नल जेम्स टॉड ने 'Annals and Antiquities of Rajasthan [एनाल्स एण्ड ऐन्टिक्विटिस आफ राजस्थान] में उन महावीरों के पौरुष पूर्ण व्यक्तित्व को सजीवता के साथ चित्रित किया है।

पिता श्री! आप दुर्ग की चिन्ता न करें निर्भय होकर शत्रु से लोहा लें। जब तक दुर्ग का एक भी पत्थर पत्थर से मिला है, उसकी रक्षा मैं करूँगी।'

यह वाक्य है, महलों में पली जैसलमेर के महाराजा रत्नसिंह की पुत्री रत्नावती के।

अपने पति सलूंबर रावत रत्नसिंह के पलायनवाद को चुनौती देती हुई बूंदी की हाड़ी रानी—

कह्यो, ठेर सै सैनाणी,
कह झपट खड्ग धींग्यों मारी

सिर कट्यो हाथ में उछल पड़यो,
सेवक भाग्यो न समाणी ।"

अपने सतीत्व व मर्यादा की रक्षा के लिए सुन्दरता की प्रतिमा महारानी पद्मिनी जिसके शौय और बुद्धिमत्ता स सम्राट अलाउद्दीन खिलजी को मुंह की खानी पड़ी के जौहर ! शिशुस्वामी की रक्षा के लिए अपने लाड़ले पुत्र को मृत्यु की गोद में फेंक देने वाली पन्ना धाय! सम्राट अकबर के मद को चूण करने वाली शक्ति जोधाबाई रानी के पवित्र सूत्र में हिन्दू-मुस्लिम की भेद रेखा मिटाने वाली रानी कर्मवती भगवान कृष्ण की मतवाली आराधिका मीरा आदि देवियाँ नारी के शौर्य प्रेम त्याग और बलिदान की प्रतीक हैं।

स्वतन्त्रता और स्वाभिमान की रक्षा म अपना सवस्व समर्पित कर पहाड़ों और जंगलों की खाक छानने वाला एवं घास की रोटी पर संतोष करने वाला रणकेसरी महाराणा प्रताप जिसने किसी भी शक्ति के सामने अपने घुटने नहीं टिकाए। हल्दी घाटी का पवित्र मदान, भारत के इतिहास का गौरव प्रताप-सा स्वामी और भामाशाह-सा दान-वीर पाकर, अश्व चेतक भी अपनी अद्भुत शक्ति का परिचय देकर सदा के लिए अमर हो गया। महाराणा कुम्भा राणा संग्रामसिंह, पृथ्वीराज चौहान, वीर दुर्गादास अमरसिंह राठोर गोरा-बादल बसी अनेक हस्तियो के पराक्रम ने भारतीय इतिहास के गौरव को बढ़ाया है, आज भी व गौरव गाथाए लोक गीतों और कहानियों के रूप में व्यक्त की जाती हैं। राजस्थान का अतीत गौरवपूण है। यहाँ के वंशज प्रायः देश के सभी भागों पर शासन करते रहे हैं। यहाँ के शक्तिशाली राजाओं से नेपाल का शासन भी अछूता नहीं रहा है।

कला के क्षेत्र में राजस्थान का विशिष्ट स्थान रहा है। विश्व के तीन सुन्दर शहरों में पेरिस और वेनिस के साथ जयपुर का भी नाम लिया जाता है। चौड़ी स्वच्छ सीधी सड़कें, प्रसिद्ध इमारतों म से एक 'हवा

महल' 'रामभवन', 'राम निवास उद्यान', खगोल एवं ज्योतिष शास्त्री महाराजा जयसिंह द्वारा निर्मित 'जन्तर-मन्तर' आमेर तथा गल्ता की घाटी शहर के प्रमुख आकर्षण है।

अजमेर का 'ख्वाजा दरगाह' 'ढाई दिन का झोंपड़ा', 'अन्ना सागर-सरोवर' निकट ही तीर्थराज पुष्कर उदयपुर का पिछोला सरोवर 'जल मन्दिर' 'जग निवास महल', राजमहल', 'सहेलियों की बाड़ी' जय समन्द', 'राज समन्द', 'चित्तौड़ का कीर्ति स्तम्भ', नाथ द्वारा का 'श्री कृष्ण मन्दिर', केसरिया जी का 'जग मन्दिर', जोधपुर का 'चित्र पैलेस' 'गुलाब सागर' 'महामन्दिर' और 'मण्डोर' भरतपुर का किला' तथा बीकानेर का 'राजमहल' आबू का प्रसिद्ध 'देलवाड़ा मन्दिर आदि राजस्थान की कला और सौन्दर्यप्रियता के प्रतीक हैं।

अतीत का गुर्जर प्रदेश आज गुजरात' के नाम से प्रसिद्ध है। कच्छ-सौराष्ट्र का मैदानी-प्रदेश जिसके पूरब में अरावली' 'विन्ध्याचल' 'सतपुड़ा' की पर्वत श्रेणियां घने जगल और उसमें निवास करने वाले 'सिंह' और 'चीते पश्चिम में 'अरब सागर' दक्षिण में 'साबरमती', 'नर्मदा', 'बनास' और 'ताप्ती' नदियां, उत्तर में 'खनिज भण्डार'। प्रकृति-स्रष्टा के साथ कृषि, उद्योग में प्रगतिशील प्रदेश अतीत के वैभव से जुड़ा हुआ लगता है।

यहां के शासक बुद्धिमान होने के साथ-साथ कलाप्रिय भी थे। यही कारण था कि युद्ध की विभीषिकाओं के बीच भी इसके विकास काय पूर्ववत् चलते रहे। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य सौराष्ट्र तक फैला हुआ था। नवीं शताब्दी में यहां सोलकी वंश के राजाओं का आधिपत्य था, जो कला, संस्कृति के अनन्यतम पुजारी थे इनके द्वारा निर्मित देवालयों के अवशेष कला के सुन्दर उदाहरण हैं। मुगल सम्राटों की दृष्टि से यह खिलता हुआ प्रान्त बच न सका। ई० १३०४ में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी समूचे प्रदेश को हथिया कर यहां के सुल्तान

शिवाजी के नेतृत्व में महाराष्ट्रियनों की तलवारें खून निगल रहीं थीं

स्वतन्त्रता संग्राम में भी महाराष्ट्र किसी से पीछे नहीं रहा गोपाल हरि देशमुख न्यायाधीश महादेव गोविन्द रानाडे श्रीकृ चिपलूणकर आदि ने राष्ट्र भावना के विकास में अपने आप को लगा दिया। 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' जैसे प्रेरणा पूर्ण ना के सृजक भारत केसरी लोकमान्य तिलक ने भारतीय गौरव को प्रमुख प्रदान की। शिक्षा शास्त्री गोपाल कृष्ण गोखले ने देश की स्वतन्त्रता के लिये देश भर में जन जागृति की एक नवीन लहर पदा की। विदेशी सत्ता की जकड़ी बेड़ियों से देश में त्राहि त्राहि मच गई थी। उस समय देश मुक्ति के नेताओं के लिये इशारे पर करोड़ों हाथ ऊपर उठ जाते थे

साहित्य संस्कृति कला और धर्म की दृष्टि से महाराष्ट्र एक प्रतिभा शाली प्रदेश रहा है। ज्ञानदेव नामदेव तुकाराम जैसे संतों सक्खूबा आदि सतियां, धर्म उत्थान के क्षेत्र में महाराष्ट्र की कीर्ति पताका फहरा चुके हैं। इनके लिखे साहित्य गद्य और पद्य आज भी बड़े प्रेम से घर घर में सुने और गाए जाते हैं। छत्रपति शिवाजी के काल में वीररस के साहित्यों का सृजन बहुत बड़ी संख्या में हुआ जिसे पढ़ सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। 'भूषण' कवि शिवाजी के दरबारी कवियों में से एक थे। कहा जाता है कि शिवाजी के गुरु समर्थरामदास और वीररस के काव्य प्रणेता भूषण की प्रेरणाओं और माताश्री के उद्बोधनों ने छत्रपति शिवाजी को देश का एक महान योद्धा बना दिया।

बौद्ध हिन्दू तथा जैन महात्माओं ने साधना और तपस्या के निमित्त यहीं के निर्जनवनों और पहाड़ियों में कन्दराएँ बनाई। अजंता, एलोरा एलीफेन्टा आदि गुफाएं कला की श्रेष्ठतम कृतियां हैं।

प्रकृति-छटा से परिपूर्ण होने के साथ-साथ इस प्रदेश पर गहरी आधुनिकता की भी छाप पड़ी। उद्योग-व्यापार का विश्व विख्यात केन्द्र बम्बई वर्तमान निर्माण कला का सुन्दरतम उदाहरण है। यहाँ की

पहले-पहल अजनबी के लिए प्रथम बार आश्चर्य का विषय बन जाती है। देश का सबसे बड़ा बन्दरगाह जहाँ सैकड़ों की संख्या में एक साथ तैरते जलयान अपनी अनुपम छटा का प्रदर्शन-सा करते दीखते हैं, विशाल रेलवे स्टेशन 'विक्टोरिया टर्मिनस' जिसे बोरीबन्दर भी कहा जाता है, तथा मध्य रेलवे का स्टेशन (बोम्बे सेन्ट्रल) विश्व के इने गिने स्टेशनों में से है मरीन ड्राइव चौपाटी, गेट वे आफ इण्डिया म्युजियम् जहाँगीर आर्ट गैलरी, रानी का बाग बालकेश्वर, मुम्बादेवी पावर हाउस, महालक्ष्मी रेस कोर्स अमरनाथ भाभा अणु अनुसन्धान केन्द्र तथा पहाड़ी टीलों पर बने पार्क आदि बम्बई के प्रमुख दर्शनीय स्थलों में से हैं।

उद्योग कृषि में महाराष्ट्र प्रगतिशील प्रान्तों में है। बम्बई शहर के विभिन्न भागों में ऊँची-ऊँची मीनारें धुआं उगलती हुई मानों अपने व्यवसाय कला का सचित्र समा बांध रही हों। साथ ही चल-चित्र उद्योग का यह प्रधान केन्द्र है। प्राय देश के प्रत्येक भागों से लोग बड़ी संख्या में यहाँ व्यापार और नौकरी के सिलसिले में आए हुए हैं। इस आधुनिक महानगरी में कला संस्कृति और साहित्य आज भी यत्र-तत्र अतीत का सौन्दर्य लिए हुए दृष्टिगोचर होते हैं तब लगता है कभी यह कला सस्कृति साहित्य का गढ़ रहा होगा। विशाल समुद्र इस नगर को तीन ओर से अपनी गोद में लिए हुए है।

प्राचीन काल में देश का सबसे बड़ा बन्दरगाह, वाणिज्य केन्द्र लम्बे समय तक पोर्तगीज के अधीन रहा था। अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत होने के कारण इस बन्दरगाह से देश की दुर्लभ और अमूल्य वस्तुएँ इसी मार्ग से विदेश भेजी जाती थी, मुगलकालीन हीरे, जवाहरात पन्ना मोती नीलम सुलमान, माणिक पुखराज मूंगे आदि बहुमूल्य वस्तुएँ जो उन दिनों प्रसिद्ध इमारतों आदि के फर्श और दीवारों छतों पर नक्काशीकारी ढंग से जड़ी हुई थीं संग्रहालय आदि में आभूषण वास्तु शिल्प के रूप में संग्रहीत थी अंग्रेजी हुकूमत द्वारा निर्दिष्ट स्थानों से

हटाकर इसी मार्ग द्वारा इंगलैण्ड और जर्मनी के संग्रहालयों में पहुँचा दी गई।

पुर्तगाल के आधीन 'गोवा' जो भारत का ही अभिन्न अंग रहा था, कुछ समय पूर्व स्वतन्त्र होकर भारत गणराज्य में सम्मिलित हो गया। इसकी स्वतन्त्रता का इतिहास बड़ा रोमांचकारी रहा है। भारतीय नागरिक वर्षों तक इस प्रदेश में अहिंसक संघर्ष करते रहे हैं। कठिन से कठिन यातनाएँ, सजाएँ भी वे हँस-हँस कर भोगते रहे हैं।

पोर्तगीज पश्चिमी राष्ट्रों के व्यापारिक सम्बन्धों की मध्यस्थता के रूप में काफी प्रसिद्ध रहा है। समुद्र से घिरा होने के कारण यहाँ का वातावरण बड़ा रमणीक लगता है। गोवा की भूतपूर्व राजधानी 'पंजिम' पुर्तगाल की कला की इमारतों का गढ़ है। यहाँ का सेंटस्जेवियर्स का 'गिरजाघर' विश्वविख्यात है। अधिक काल तक विदेशियों के अधिकार में रहने के कारण यहाँ की संस्कृति कला एवं साहित्य में विदेशीपन का मिश्रण हो गया है। यहाँ के निवासी संगीत, कला, चित्रकारी आदि में निपुण होने के साथ-साथ हँसमुख और स्नेह प्रिय होते हैं।

गोवा से पूर्व दक्षिण की ओर सागर तटीय प्रदेश मैदान पर्वत घाटियाँ और उनके बीच झरते हुए झरनें और शांत सरोवर, और प्रकृति सौन्दर्य का आगार 'केरल' प्रदेश है।

मलयालम् भाषा में 'केर' का अर्थ 'नारियल और आलम्' का अर्थ 'घर' होता है। नारियल का घर अर्थात् 'केरल'। कृषि और मछली पकड़ना यहाँ के जीवन-यापन का प्रमुख साधन है। प्राचीन काल में यह परशुराम और देवांग बली का देश माना जाता था। नम से बने हुए दूर-दूर तक कपर्दों मजदूरों के घर बड़े सुन्दर से दीखते हैं। व्यापारिक दृष्टि में यह उन्नतिशील प्रदेश कहा जाता है। काली मिर्च सुपारी नारियल और इलायची आदि मूल्यवान पदार्थों की उपज के कारण इसकी चर्चा विश्व के प्रमुख बाजारों में होती है। प्राचीन काल में भी

यह प्रदेश व्यापार में अग्रणी रहा है। 'कणनूर' 'कोजिकोड' और केशानूर प्राचीन समय के बन्दरगाह थे। प्रसिद्ध राजा कालिकोड सामुद्रि के समय में ही (ई० ४१९८) स्पेन के नाविक वास्कोडिगामा' कापीकू बन्दरगाह पर आया था। कालिकोड के पश्चात् कोलत्तरी पेरूमान और 'पेरूमाल' सोलहवीं और अठारहवीं सदी के प्रसिद्ध राजा थे। अठारहवीं शताब्दी में मैसूर राज्य का अधिनायक' टीपू सुल्तान' ने केरल के अन्य कुछ क्षेत्रों के साथ मलबार पर अपना आधिपत्य जमा लिया। जो अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक मुगलों के ही अधिकार मे रहा। अवशेष क्षेत्रों के शासक मार्तण्ड वर्मा के शासन काल में पोचगीज, डच एवं अंग्रेजों का यहाँ आगमन हुआ। 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की व्यापारिक कूटनीति की आड़ में सम्पूर्ण केरल अग्रेजों के हाथ में चला गया। इस पराधीनता को चुनौती देने के लिए मार्तण्ड वर्मा के सेनापति वेलुतम्बीदलवाय और रामकष्ण पिल्ले आदि स्वतन्त्रता प्रिय सेनानियों ने संघर्ष भी किया।

अद्वैतवाद के प्रणेता श्री शंकराचार्य का जन्म नम्बूदरी ब्राह्मण कुल में केरल के कालड़ी गांव में ही हुआ था। इनकी विद्वत्ता की धाक सारे विश्व में फैली हुई थी। भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक अद्वैतवाद की धूम मच गई। समस्त विश्व की मानवता को एकत्व दृष्टि से देखने एक जाति, एक धर्म, समभाव के प्रचारक वीर नारायण गुरू तथा हिन्दू-मुस्लिम मैत्री के सूत्राधार दबोध सम्भूत आय्यप्पा की भूमि केरल ही रही है।

यहाँ की भाषा मलयालम संस्कृति प्रधान भाषा है। तु अत्तयेमुतच्चन मलयालम भाषा के जन्मदाता माने जाते हैं मलयालम भाषा में इनके द्वारा लिखी रामायण संत तुलसी के रामचरित मानस की कोटि में गिनी जाती है। चेरुशेरी नम्बूदरी के 'भागवत' की तुलना सूर काव्य से की जाती है। यहाँ के प्रसिद्ध साहित्यकारों में नम्बीयार चाक्यारकूत मलेपत्तूर, नारायण भट्टतिरि, महाकवि कुमार आशान, परमेश्वरन्

तथा नारायण मेनन आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वर्तमान के लेखक पालानारायणन नायर को "केरलम मलमनुं" नामक उच्चकोटि के साहित्य सजन के लिए साहित्य एकेडमी पुरस्कार" मिला जो मलयाली माहित्यकारों एवं वहाँ की शिक्षा प्रिय जनता के लिए गौरव की बात है। चेंमपुल्ला, पि कण्णपिल्लै आदि अनेक माहित्यकार जिनकी प्रमुता मेदनी पर रस ही रही है उत्कृष्ट रचनाओं के लिए पुरस्कृत हो चुके हैं।

'इन्नम पैदोक मुोढ्यम मूढक् इन्नत आचार माइट्टुम' अर्थात्— "पुरान समय में सन्दर्भ के अनुसार किया गया आचरण आज के मूढ लोगों के लिए धम एवं परम्परा का विषय बन जाता है।' नए चिंतक आशावादी माहित्यकारों ने उक्त कथन का समर्थन करते हुए, रूढ़िवादिता कुसंस्कार आदि दुगुणों को चुनौती दे डाली है। लेखक 'इस्लूर' प्रेम में ही धम मत गुण समाहित है, का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—'ओरहमतमुख्ड उत्तमिन्नुमिराम प्रेमम् मदम्मोस्सोम्। यहाँ का साहित्य अधिक प्राचीन नहीं है परन्तु कम-अवधि में भी यहाँ के लेखकों और कवियों ने अपनी योग्यता का अद्भुत परिचय देकर शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान आकृष्ट कर लिया है।

अतीत की वैभवशालिनी कलाकृतियां केरल की गरिमा को आज भी भली भाँति प्रकट कर रही हैं। तिरुवनन्तपुर का प्रसिद्ध पद्मनाभ स्वामी मंदिर तिरुवन्नमलूर कृष्ण मन्दिर मादुर के ताण्डव नृत्य की मुद्रा में उग्र शिव मन्दिर अमाल्न स्वामी देवालय कालडी का शारदा मठ श्री नारायण समाधि आदि धर्म स्थलों से पता चलता है कि प्रारम्भ से ही यहाँ धार्मिकता जीवन का अंग रही है, वास्तु निर्माण कला इसकी साक्षी है। चित्रकला में राज राजवर्मा भारत में ही नहीं संसार भर में अपनी तूलिका के लिए प्रसिद्ध हैं। नृत्य और नाट्य कला ओट्ट तुलल और कथकली भारतीय नाट्य परम्परा में एक नवीन धनी है।

केरल जनसंख्या मे भूमि के अनुपात से कहीं अधिक है। शिक्षा की दृष्टि से केरल भारत का सबसे उन्नतिशील प्रदेश है। यहाँ के लोग सामान्यतः शिक्षा प्रेमी होने के साथ पूर्ण शिक्षाविद् भी होते हैं। यहाँ की नारियाँ भी काफी शिक्षित होती है। कार्य निष्ठा, श्रम और विवेक केरल की विशेषता मानी जाती है। यहाँ के शिक्षित श्रम भारत के अलावा विदेशों में भी मिलेंगे।

प्रकृति प्रदत्त सुन्दरता पहाड़ एवं घाटियाँ नदियाँ और झरनें, सुखदायक मौसम, केरल के पास का कन्नड़ भाषियों का प्रदेश मैसूर मध्ययुग में कर्नाटक कहलाता रहा। शाक्य-शाक्त अनुयायियों के ग्रन्थों म महिषासुर नामक विशाल राक्षस का वर्णन मिलता है। कहा जाता है कि उसके अत्याचार से जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था शक्ति ने स्वयं अवतरित हो उस क्रूर राक्षस का वध किया था। यही कारण है कि देवी उपासकों म वह महिषमर्दिनी के नाम से विख्यात हैं। महिषासुर के कारण ही इस प्रान्त का नाम प्रारम्भ में महिसुर था जो बाद में 'मैसूर" के नाम स जाना जाने लगा।

मैसूर नगर की अनुपम सुन्दरता व्यवस्थित विधाम भवन, चमकते हुए स्वर्णयुक्त नक्काशीकारी के राजमहल जग-मोहन पैलेस, ललित महल चौड़ी साफ सड़कें और इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण कावेरी नदी पर बना बांध एव उसकी जलनिधि स सजाया गया वृन्दावन' उपवन मानवीय बुद्धि-कौशल का अनुपम उदाहरण है। इन्द्रधनुषी रंगों म रंगीन फव्वारों की रंगीन फुहार, रंगीन फुलवारियों के रंगीन फूल, रंगीन विद्युत-बत्तियों से फैलते रंगीन प्रकाश सामने का भव्य भवन मैसूर की शान के लिए पर्याप्त हैं।

यहाँ का चिड़ियाघर, देश के चिड़ियाघरों में से एक है। अतीत में यहाँ के शासक प्रजा पालक क अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर प्रजा की दृष्टि म देवत्व प्राप्त किये हुये थे। लोग वर्ष में एक बार विजय दशहरा' के दिन राजमहल से गाजे-बाजे के साथ निकलने

वासी राजा की सवारी के दर्शनार्थ एवं श्रद्धा कुसुम अर्पित करने के लिए मीलों लम्बी पंक्ति में खड़े रहते थे। जय-जयकार के घोषों से सारा क्षेत्र गूँज उठता था। आज भी यहाँ के निवासी उस परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। यातायात सुलभ होने के कारण इस दृश्य को देखने के लिए भारत के कोने-कोने से सैकड़ों की संख्या में लोग यहाँ आते हैं।

इस प्रान्त की राजधानी भव्य नगर 'बेंगलूर' अपने सौन्दर्य प्राकृतिक वैभव, उद्योग-बाहुल्य व दर्शनीय स्थलों द्वारा राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष प्रसिद्धि का केन्द्र बन गया है। इसके नामांकन का इतिहास तथा दैविक उपलब्धि का चामत्कारिक तथ्य आतम्य तथा अनुसंधान का विषय है। कहा जाता है कि ईसवी सन् १५३७ में विजय नगर के अधीनस्थ यलहंका नगर के अधिपति कैम्पेगौड़ा ने इसे बसाया था जिसके राज्य की परिधि उत्तर में रामपुर पश्चिम में कुनिगल दक्षिण में थानेकल व पूर्व में होसकोटे तक थी। प्रारम्भ में इसका नाम 'बेंद का मूरू' था आगे चल कर अपभ्रंश के रूप में बेंगलूर हो गया।

कल कारखानों का यह उद्योगी शहर देश की सामरिक तथा अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करने में संलग्न है। यहाँ के कल-कारखाने अपनी कार्यक्षमता के लिए प्रसिद्ध हैं। आधुनिक वातावरण में भौतिक प्रगति की ओर इस शहर ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। भारत के प्रसिद्ध नगरों में बेंगलूर भी अपना एक स्थान रखता है। दर्शनीय स्थलों में लालबाग का सुन्दर उद्यान, प्रसिद्ध वैज्ञानिक भारत रत्न विश्वेश्वरय्या की स्मृति में बना टेक्नालाजिकल म्युजियम, विधान-सभा भवन, सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक शोधन संस्थान—इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ साइन्स [Indian Institute of Science] नोबल पुरस्कार विजेता सी० वी० रामन् का संशोधनालय हिन्दुस्तान मशीन टूल्स हिन्दुस्तान वाच फैक्टरी मैसूर गवर्मेंट सोप फैक्टरी

हिन्दुस्तान ऐरोमटिक्स लि० तथा भारत इलेक्ट्रोनिक्स रेमको, किर्लोस्कर इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

शिवसमुद्रम् का कावेरी प्रपात एवं जोगफाल्स का शरावती प्रपात जो क्रमशः १०० एवं ५० फीट की ऊंचाई से गिरकर विद्युत शक्ति का निर्माण करते हैं संसार के बड़े जल प्रपातों में से है। शरावती का जोगफाल्स तो विश्व में अपने ढंग का एक ही है। कोलार गोल्ड फील्ड देश में सोने की खान का एक ही स्थान है। इसके अतिरिक्त माईका, मैंगनीज, लोहा, रेशम और चन्दन इस प्रदेश की प्रमुख देन है।

नदीहिल्स केमणगुंडी मंगलूर की घाटियाँ और समुद्री प्रदेश प्रकृति प्रेमियों के खिचाव का विषय हैं। सोमनाथ, बेलूर, हलेबीड़ श्रीरंगपटनम् के टीपू सुल्तान का महल, एक चट्टान से निर्मित चंद्रगिरि पर्वत श्रेणियों पर गोमटेश्वर बाहुबली की जगत प्रसिद्ध ५७ फिट ऊंची विशाल मूर्ति और श्रवण बेलगोल के अन्य जैन मन्दिर जहाँ सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की २२ वर्षीय तपस्या तथा भक्ति की स्मृतियों का विषय बनाया गया है हम्पी के खण्डहर और बादामी की चित्र कला प्रदेश की कला के श्रेष्ठतम नमूने हैं। बेलूर और हलेबीड़ मन्दिरों की नक्काशी ऐसी लगती है जैसे यहाँ पत्थर की निर्जीव मूर्तियाँ नहीं भावों की साकार प्रतिमाएँ हैं। जिसका वर्णन करते हुए प्रसिद्ध कवि के० वी० पुट्टपा कहते हैं—

'बागि लोलु कैमगिद्दु ओलगे बायाग्रिडने,
शिलेयल्ल वी गुडियु कलेय नेलेयु।"

—यात्रिक! हाथ जोड़ कर अन्दर आओ, यह पत्थर की मौन प्रतिमाएं नहीं कला के मन्दिर हैं।

इक्ष्वाकु चोला, पाण्ड्या पल्लव, राष्ट्रकूट होयसल तथा विजय नगर के राजवंशों के काल में मैसूर ने प्रगति ही की। इस क्षेत्र में

ओडेयर वंश की विशेष प्रतिष्ठा है। स्वतन्त्रता के बाद मैसूर प्रदेश के महाराजा जयचाम राजेन्द्र ओडेयर का इसी प्रदेश का राज्यपाल बनना एवं आज भी जनता द्वारा वही सम्मान प्राप्त करना प्रजा वत्सलता का ही सुपरिणाम है।

यहाँ की सभ्यता और संस्कृति शान्ति-प्रिय रही है। नई उप-लब्धियों और विचारों का यहाँ सदैव स्वागत होता रहा है, यही कारण है कि बौद्ध एवं जैन मत यहाँ अपना स्थान बना सके। राजस्थान एवं गुजरात के पश्चात प्रमुख जैन स्मारकों में मैसूर प्रान्त का नाम लिया जाता है। मैसूर, राष्ट्र की भावात्मक एवं समन्वयात्मक एकता में विशिष्ट स्थान रखता है। विभिन्न भाषा भाषी लोग भी यहाँ अपनत्व की भावना से परिवेष्टित हैं। प्राणी-मात्र में श्रद्धा और प्रतिष्ठा की दृष्टि रखना यह यहाँ के निवासियों की महानता का उदाहरण है। बसवण्णा जी की भाषा में — "अय्या एन्दरे स्वर्गा एलवो एन्दरे नरका"

—'आप' कहना ही स्वर्ग है और 'तू' कहना ही नरक है। कितना मार्मिक दृष्टांत है। पुरुषों को 'स्वामी' और महिलाओं को 'माँ' कहना यहाँ की सभ्यता के अनुपम उदाहरण हैं।

राष्ट्रकूट के सम्राट नृप तुंग का कन्नड़ साहित्य का आदि कवि माना जाता है जिन्होंने 'कर्नाटक वैभव' नामक ग्रंथ का निर्माण किया। कवि पंप रन्न जन्न कन्नड़ के आदि कवियों में गिने जाते हैं। हरिहर राघवांक, सर्वज्ञमूर्ति बसवण्णा जी कुमारव्यास पुरन्दरदास अल्लमप्रभु अक्क महादेवी भामेश्वर आदि यहाँ के प्रसिद्ध साहित्यिक रहे हैं। वर्तमान साहित्य सेवियों में 'मंकुतिम्मनकग्गा' के लेखक डी० वी० गुण्डप्पा 'रामायण दर्शन' के रचयिता के० वी० पुट्टप्पा जिन्हें अभी-अभी कुछ महीनों पूर्व ज्ञानपीठ वाराणसी पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है शिवमूर्ति शास्त्री शिवराम कारंत डी० आर बेन्द्रे आ० ना० कृष्णराव डा०

रा० सुब्बराव एस नरसिंमम्मा आदि की रचनाएँ साहित्य जगत की अमूल्य निधियाँ है।

द्रविड सभ्यता का प्रतीक 'तमिलनाडु जिसे मद्रास' भी कहा जाता है भारत के दक्षिणी छोर पर बसा हुआ प्राचीन संस्कृति सभ्यता और कला का माना हुआ क्षेत्र है। यहाँ के कलायुक्त मंदिर विश्व विख्यात हैं। भारत के एक ओर उत्तर में जहाँ हिमालय पर्वत श्रेणियाँ हैं वहाँ दक्षिण में कन्या कुमारी एवं उससे छूता हुआ सागर तट जहाँ अरब महासागर हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी इन सागरों का संगम होता है। स्वामी विवेकानन्द सरस्वती का ध्यान, एकान्त क्षेत्र कन्या कुमारी जहाँ उनकी स्मृति में करोड़ों की लागत से भव्य स्मारक का निर्माण हो रहा है अपनी विविध आभा के लिए अपने ढंग का विश्व म महत्वपूर्ण स्मारक होगा। प्रातःकालीन अरुण रश्मि से सागर की लहरें यहाँ सौन्दर्य का समां बांध देती हैं।

> अहा! अरुण रश्मियों से लहराती सागर की लहरें।
> रंग बिरंगे परिधानों में तरुणाई सी झूम रहीं।"

कन्या कुमारी नागर कोयल, मदुरै-मीनाक्षी महाबलीपुरम्, कांची पुरम, तिरुवन्नामलै, वेल्लूर चिदम्बरम्, कुम्भकोणम् तन्जौर श्रीरंग त्रिचनापल्ली रामेश्वरम् के विख्यात मंदिर भारतीय शिल्पकला एवं स्थापत्य कला की सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ है। तमिलनाडु को शिल्प प्रदेश मन्दिरों का गढ़ कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। यहाँ के मन्दिर देवालय कलाकारों की अनवरत कला-साधना, तपस्या एकाग्रता, कामनिष्ठा एवं कुशलता के ही सुपरिणाम है। मनुष्य के हाथ इतने विशाल कलापूर्ण मन्दिरों का निर्माण भी कर सकते हैं आश्चर्य का ही विषय है। शिल्पकला का अग्रणी तमिलनाडु संगीत नृत्य एवं नाट्य कला में भी पीछे नहीं है।

तमिलनाडु का इतिहास भारतीय इतिहास का प्राचीनतम इतिहास

है। चेरा चोला एवं पांड्या राजवंश। यहां के प्राचीन शासकों के राजाओं की राजधानी वंजी चोलों की पुहार तथा पांड्याओं की मदुरै रही है। इनके ऐश्वर्य शौर्य-वीरता तथा प्रजा वत्सलता पूर्ण शासन की गाथाएं आज भी तमिलनाडु के प्रत्येक घर में सुनाई देती है। शासक वर्ग केवल पराक्रमी ही नहीं धर्म, साहित्य एवं कला के उपासक भी थे, जिसके प्रमाण तमिल-ग्रन्थ एवं मन्दिर (कोयल) हैं। पल्लव राजाओं ने कांचीपुरम् [स्वर्ण-नगरी] को अपनी राजधानी बनाया। इनके पश्चात् इस क्षेत्र में विजय नगर के राजाओं का शासन रहा जिनमें कृष्णदेव राय का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रदेश में मराठा मुगल और अंग्रेजी शासन भी रह चुका है। विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध वीर बोम्मन सुब्रह्मण्यम् भारती तथा चिदम्बरम् पिल्लै आदि का कार्य उल्लेखनीय है।

तमिल साहित्य विश्व के प्राचीन साहित्यों में माना जाता है। जिसके आदि कवि अगस्त्यर था 'महाभारत' तमिल साहित्य की प्राचीनतम निधि है। तिरुवल्लुवर का 'तीरुकुरल' १३३ परिशिष्ट और १३३० श्लोकों का वह धार्मिक ग्रन्थ है जिसकी प्रतिष्ठा 'वेद' के तुल्य है जो कई भाषाओं में अनुदित हो चुका है।

एन्नन्रि कोन्रार्कुम उय उण्डाम,
उयविल्ल सेय्नन्रि कोन्र मगर्कु।

—उपकार पर कृतज्ञता न दिखाने वाले का जीवन ही क्या जीवन है?' इस नीति-बोधक आदर्शों की यह रचना 'धन्य मणि' भी कही जा सकती है। अन्य साहित्यकारों में महाकवि कम्ब विलिल पुत्तूरार, अहनानूर पुरनानूर, कलिंगत्तु-परणी इलंगोवन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आधुनिक साहित्य ने प्रगति के साथ एक नई दिशा भी ली है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् तमिलनाडु में उद्योग-धन्धों का भी काफी विकास हुआ है, पैरम्बूर कोच फैक्टरी आदि अनेक फैक्टरियां, एवं

कारखानों की बहुलता इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। फिल्म उद्योग में भारत का यह दूसरा बड़ा केन्द्र है। कृषि-विकास के साधनों में मिट्टूर बाँध तथा कोट्रालम् प्रपात का नाम लिया जा सकता है। ऊटी एवं कोडाई केनाल प्राकृतिक सुन्दरता के अनुपम स्थान है। तमिलनाडु कृषि, उद्योग एवं साहित्य, कला, संस्कृति का एक समृद्ध प्रदेश है।

ऐसे समृद्ध प्रदेश का पड़ौसी कृष्णा, गोदावरी पेन्नार एवं अनेक उपनदियों से सिंचित सदा हरा रहने वाला प्रदेश अनेक नदियों से एवं नागार्जुन सागर बांध से सिंचित यह प्रदेश खाद्य के क्षेत्र में स्वनिर्भर है। समुद्र के तटीय क्षेत्रों में खजूर, नारियल, ईख बहुतायत से होते हैं। आन्ध्र का इतिहास काफी प्राचीन है जिसका वर्णन पुराणों में आता है।

अशोक व चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद यहाँ सातवाहन के वंशज शासन करते रहे। सातवाहन वंश के राजा श्री गौतमी पुत्र सातकर्णी उस समय के जनप्रिय राजाओं में थे। सातवाहन के बाद इक्ष्वाकु पल्लव आदि राजाओं ने इस पर अपना आधिपत्य जमाया और लगभग ३०० वर्षों तक अपने अधिकार में रखा। इसी समय उत्तर आन्ध्र में चालुक्य राजवंश प्रबल बना। १२ वीं शताब्दी में वारंगल के काकतीय राज वंशों ने इस पर शासन किया। काकतीय के—२५० वर्षों के राज्यकाल में आन्ध्र ने वाणिज्य कला-साहित्य निर्माण कार्यों म पर्याप्त प्रगति की। ई० १३२३ में मुस्लिम सुल्तानों ने इसे अपने अधिकार में ले लिया। उसी समय हिन्दू राज्य विजय नगर साम्राज्य की स्थापना हुई। कुछ ही समय में सम्पूर्ण आन्ध्र विजयनगर साम्राज्य का अविच्छिन्न अंग बन गया। ई० सं० १५०९ से १५३० तक सम्राट कृष्णदेव राय के साम्राज्य में आन्ध्र प्रदेश की व्यवस्थाएं सुनियोजित रहीं। कृष्णदेव राय के पश्चात् ई० स० १५६५ में विजय नगर साम्राज्य के अन्तिम राजा रामराज की तालीकोटा के भयकर युद्ध में हार के पश्चात् गोलकुण्डा राज्य की स्थापना हुई। आन्ध्र क्रमशः—कुतुबशाह

औरंगजेब, बहादुर शाह आदि मुगलशासकों के अधीन हो गया। इसी समय निजाम-उल-मुल्क ने हैदराबाद-निजाम राज्य की स्थापना की। अंग्रेजों के आक्रमण से आन्ध्र का कुछ भाग तमिलनाडु (मद्रास) के साथ जुड़ गया। सन् १९५२ ई० में भाषा के आधार पर आन्ध्र का पुनः गठन किया गया।

संघर्षों के साथ नवीन संस्कृतियां यहाँ समय समय पर जन्म लेती रही हैं। तेलगू यहाँ की मूल भाषा है किन्तु पूरे प्रदेश में उर्दू बोलचाल भी कम नहीं है। तेलगू संस्कृत प्रधान भाषा है, इसका साहित्य भी इतिहास की भांति प्राचीन है। सातवीं शताब्दी में गद्य काव्य की रचना भी तेलगू में हो चुकी थी। ग्यारहवीं शताब्दी में तेलगू का प्रथम महाकाव्य 'रामायण' आदि कवि नन्नय भट्ट द्वारा लिखा गया।

नागार्जुन कोण्डा मंसी, निर्माण शिल्प कला के क्षेत्र में अपने ढंग की अनोखी बस्ती है। यह धार्मिक भावना का ही परिणाम था जिसने शिखरों को चैत्यों व मठों में बदल दिया। भगवान बुद्ध के जीवन से अनुप्राणित पाषाण, कला की अनुपमकृतियां बन गए। तिरुपति बालाजी में आज भी श्रद्धालु भक्तों का तांता लगा रहता है।

हैदराबाद का सालार जंग म्यूजियम आजम शाही बाजार चारमीनार, मक्का मसजिद चार मीनार, मुगल कालीन कला के सौष्ठव हैं।

अन्य प्रान्तों की भांति यहाँ भी उद्योग धन्धों का विकास तेजी से हो रहा है। विशाखापट्टनम् का जहाज का कारखाना देश में अपने ढंग का केवल एक ही कारखाना है। सिंगरेनी कोयले की खान भी यहाँ की विशेषता है।

हैदराबाद, सिकन्दराबाद विजयनगर, विजयवाड़ा, वारंगल आदि अनेक बड़े शहरों से शिक्षा, आधुनिक सुख-सुविधाएं एवं उद्योग-कर्मण्यता से अनुप्राणित आन्ध्र का भविष्य उज्ज्वल है।

आन्ध्र से उत्तर पूर्व की ओर अशोक सम्राट की भूमि, अहिंसा को जीवन का विषय बनाते वाली भूमि, उड़ीसा' उत्कल' किसी समय कलिंग कहलाती थी। हिंसा के ताण्डव नत्य से हुए रक्तपात ने महाराज अशोक को अहिंसक, अहिंसा का प्रबल समर्थक बना दिया।

शासकों के बीच यह पहला ही अवसर था जब कि अहिंसा त्यागियों और प्रबुद्ध विचारकों का ही विषय न रह कर जीवन और शासन का भी प्रबल सूत्र बन गई। यहाँ की प्रजा और शासकों में 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति चरितार्थ हो उठी। ऐसी स्थिति म यह नि·संकोच माना जा सकता है कि 'उड़ीसा' की संस्कृति अहिंसा प्रधान रही है। धर्म यहाँ क जीवन का एक अंग रहा और धर्म प्रधान मानव ने अपना जीवन कला की उपासना में लगाया। उदयगिरि की गुफाएं भुवनेश्वर पुरी कोणार्क तथा जगन्नाथपुरी क मन्दिर कलाकार के कुशल हाथों की कलापूर्ण कृतियाँ है। आज भी यहाँ के कलाकार उसी निष्ठा से कला की उपासना में लगे हुए है।

रत्नगिरि, उदयगिरि एवं ललितगिरि पहाड़ियों तक कभी सागर का फैलाव था। समय के साथ जलधि अपने उस स्थान से सिमट चुका है। इन श्रेणियों में बुद्ध परंपरा के शिक्षा और साधना क केन्द्र रहे हैं जो भारतीयों के लिए ही नहीं अपितु विश्व क आकर्षण केन्द्र रहे हैं।

साहित्य के प्रारम्भिक काल मे उड़िया साहित्य का विकास न के बराबर ही रहा है किन्तु पिछले कुछ वर्षों में जिस साहित्य का सृजन ये कर चुके हैं वह गति का ही परिणाम है। कला तथा साहित्य क विकास से उड़ीसा की संस्कृति निश्चित ही महानतम उपलब्धियों में गिनी जायगी।

उद्योग धन्धों में पिछले प्रदेश न गत कुछ वर्षों से ऐसी प्रगति की की है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। भूगर्भ शास्त्रियों ने उड़ीसा को रत्नों की खान माना है राउरकेला और भिलाई आदि

में विश्व विख्यात इस्पात के कारखाने लगाए गए हैं जिनमें करोड़ों की सम्पत्ति का समावेश है। डालमियां सीमेन्ट कारखाना यहां के उद्योग विकास में अपना योगदान दे रहा है।

तारीफ तो इस बात की है कि शिक्षा, कृषि एवं उद्योगों के विकास के साथ कला का विकास किंचित् भी मन्द नहीं हुआ है। आज भी यहां के कलाकारों को अपने पूर्वजों की कला का गौरव है तथा वे उसी पथ पर चल रहे हैं—यह कला के क्षेत्र में आशापूर्ण कदम ही है।

हीराकुण्ड जैसे बांधों के निर्माण से यहां कृषि क्षेत्र में अभिनव प्रगति हुई है। चावल, काजू और पान यहां की मुख्य उपज हैं। यहां की भूमि रेतीली है। महानदी (स्वर्णभद्रा) यहां की सबसे बड़ी नदी है कहा जाता है कि महानदी के रेत में सोने के कण पाये जाते थे, प्राचीन काल में सोना इसी रेत से निकाला जाता था। इसीलिए महानदी का पर्यायवाची नाम स्वर्ण भद्रा, भी है। अत्यधिक परिश्रम से प्राप्त होने वाला सोना देश को काफी महंगा पड़ता था इसलिए वर्तमान में रेत से सोना निकालने की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

बागनाम का पान' जिसे 'बनारसी पान के नाम से जाना जाता है, खाने में बड़ा रुचिकर होता है, तथा तामलुक का पान जिसे कलकत्ता 'पान कहा जाता है, इसी प्रदेश में पैदा होता है। देश भर में खपत होने वाले पानों में उड़ीसा के पान पचहत्तर प्रतिशत से अधिक हैं। इस प्रदेश में बंगाल की भांति सर्पों की बहुलता है। यद्यपि यहां के सर्प अधिकतर विषैले नहीं होते फिर भी उनकी गति बड़ी विचित्र होती है। ऐसा सुना गया है कि रात के समय यह दुधारू गायों के पिछले पैर को अपनी लम्बी पूंछ से आबद्ध कर लेते हैं और गायों के स्तन से मुंह लगा कर सारा दूध पी जाते हैं। क्या मजाल जो गाए इस बन्धन से जरा भी हिलडुल सें। एक बार जिन गायों का दूध इस प्रकार पी लेते हैं फिर वे जब तक दूसरा बच्चा नहीं जनती, दूध देने में असमर्थ होती हैं।

मध्य युग में यहाँ के लोग अशिक्षित गरीब तथा धर्म भीरु होते थे। परन्तु युग की करवट के साथ इन्हें भी आगे बढ़ने का मौका मिला और अब प्रगति इनकी सहचरी बन कर चल रही है।

उड़ीसा के पूर्व का पड़ोसी प्रदेश है बंगाल। आदि काल से ही प्राचीन संस्कृति का मूर्त रूप 'बंग देश' (बंगाल) का इतिहास, पराक्रम शौर्य, साहित्य और कला का जीता जागता उदाहरण रहा है। यहाँ की भाषा संस्कृत-अपभ्रंश बंगला के नाम से जानी जाती रही, बंगाल भारत का विस्तृत प्रदेश था, क्रूर समय के आघात ने इसे पंजाब की भाँति दो टुकड़ों में विभाजित कर दिया पूर्वी बंगाल पाकिस्तान बना दिया गया, अवशेष पश्चिमी बंगाल भारत के साथ पूर्ववत् बना रहा।

पंजाब और बंगाल का विभाजन जिस समय हुआ, उस समय समूचे देश में साम्प्रदायिक शक्तियाँ अपनी-अपनी शक्ति परीक्षा में लगी थीं मानवता मूर्छित हो चुकी थी, जाति और वर्ण के आधार पर खून की होली खेली जा रही थी शासन की सभी शक्तियाँ निष्फल हो रही थीं देश के बड़े-बड़े नेता चिन्तित थे। महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश-भक्तों ने इस नग्न ताण्डव को बन्द करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। स्वर्गीय श्री जवाहर लाल नेहरू ने जनता से अनुरोध किया—

"मजहब नहीं सिखाता आपस में हमको लड़ना
हिन्दी हैं हम वतन के, हिन्दोस्तां हमारा।"

लाखों की संख्या में लोग शरणार्थी बनकर एक से दूसरे क्षेत्रों में पहुँचे, सहस्रों ललनाओं का सुहाग उजड़ गया, अनेकों अबोध बालक-बालिकाएं मातृ पितृ हीन हो गए, अरबों की सम्पत्ति स्वाहा हो गई और अन्तिम निष्कर्ष निकला देश के टुकड़े विभाजन! हुगली का प्रशान्त तट कथम कंगा दार्जिलिंग की सुन्दर घटा इसका प्राकृतिक सौन्दर्य है। यहाँ की धार्मिक जनता शक्ति स्वरूप दुर्गा की उपासना करती है कालीदेवी का मंदिर, जय-दुर्गा मन्दिर, पारसनाथ-मन्दिर

और गंगा तट पर निर्मित भूतभावन भगवान शंकर का मन्दिर एक ओर श्रद्धा की सजीव मूर्तियां हैं तो दूसरी ओर कला के जीते जागते चित्र।

भारतीय संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में बंगाल गौरव पूर्ण प्रदेश रहा है। स्वतन्त्रता संग्राम में बंगाल का योग नींव के पत्थर के सदृश है। यहाँ के मानव, विचारों के धनी रहे हैं—राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर बंकिमचन्द्र शरतचन्द्र, अरविन्द घोष, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी विपिनचन्द्रपाल चितरंजन दास आदि। ये नाम विचारक ही नहीं, राष्ट्रीय भावना के प्रेरक एवं साहित्य के सफल सृजक भी रहे हैं।

श्री जगदीश चन्द्र बसु जैसे विश्व विख्यात वैज्ञानिक नेता सुभाष-चन्द बोस जैसी महान विभूतियाँ इसी धरती पर अवतरित हुई थी। ये भारत के ऐसे सपूतों में से हैं जिन्होंने कभी झुकना सीखा ही नहीं। आजाद हिन्द फौज का गठन करने वाले अमर सेनानी सुभाष का आह्वान 'तुम खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा' आज भी जब भारतीयों के मानस पटल पर स्मृत हो उठता है तो उस वीर के प्रति श्रद्धा से शीश झुक जाता है जय हिन्द के सिंहनाद से भारत को स्वतन्त्रता भी दिया। मिली और मिला उस वीर को जन जन से सम्मान। ठीक ही कहा है—

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है।"

साहित्य के क्षेत्र में बंगाल की महान उपलब्धियों का परिणाम देश का राष्ट्रगान ही है। 'जय गण मन अधिनायक जय है' तथा 'वन्दे मातरम्' की अमर कृति के रचयिता इसी प्रान्त के हैं। गीतांजलि पर रवीन्द्र नाथ ठाकुर को मिला 'नोबेल पुरस्कार' भारतीय साहित्यकारों के गौरव और सम्मान का विषय बन गया है। 'एकला चलो रे' का उद्बोधन देने वाले कवि ने मानव को जो प्रेरणा दी है वह अवर्णनीय है।

शिक्षा के क्षेत्र में बंगाल का इतिहास पूर्व से ही सम्पन्न रहा है। आज भी "शान्तिनिकेतन" जैसा प्रबुद्ध शिक्षा केन्द्र आदर्श पद्धति का प्रतीक है।

पाल सेन आदि राजवंश के राजाओं के शासन में रहे बंगाल को समय की गति के साथ मुगल साम्राज्य तथा उसके बाद अंग्रेजी हुकूमत के अधीन भी रहना पड़ा। अंग्रेजी हुकूमत के समय बंगाल में काफी उतार चढ़ाव हुआ। मद्रास और केरल की तरह यहाँ भी अंग्रेजियत खूब पनपी। अंग्रेजी भाषा के पारंगत विद्वान यहाँ सरलता से मिल जाते हैं।

हावड़ा जिले के अन्तर्गत कलकत्ता भारत का सबसे बड़ा नगर है। यहाँ अट्टालिकाएं आकाश को छू रही हैं। उद्योग-व्यापार में कलकत्ता एक बृहत्तर विकास का नगर है। लोहा, जूट कागज आदि के कारखाने व मिलें यहाँ बहुतायत से मिलेंगी। आधुनिक ढंग का बना हावड़ा ब्रिज, दुर्गापुर का स्टील कारखाना चितरंजन का रेलवे इंजिन का कारखाना भारत जनरल मोटर्स कम्पनी आदि वर्तमान युग की महान् उपलब्धियाँ हैं।

प्राकृतिक शोभा में भी बंगाल अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस सिलसिले में कवि गुरु रवीन्द्रनाथ की ये पंक्तियां —

"आमार सोनार बांगला
आमी तो माय भालो बासी,
तोमार आकाश तोमार बातास
आमार प्राणे बाजाय बांसी।"

प्रकृति का कितना सजीव चित्रण करती हैं।

ऐसा लगता है कि ये पंक्तियाँ बंगाल के उन अंचलों से सम्बन्धित हैं, जहाँ प्रकृति है कल-कल करती नदियाँ निरन्तर प्रवाहित हैं, हवा वृक्षों के पत्तों से हिल मिल कर मृदु स्वर उत्पन्न करती हैं स्वच्छन्द

आकाश में पक्षियों का विचरण है। धान के खेतों में सुनहली धान की बालियाँ लहलहा रही हैं।

प्रकृति की उन्मुक्तता को निकट से देखने पर ज्ञात होता है कि चारों ओर वृक्ष, पौधे धान की खेती, पोखरें जिनमें किलोल करती सुकुमार बंगाल की ग्राम बालाएं, रंग बिरंगे फूल और सबके ऊपर मेघदूत की कृपा।

बंगाल के निकट का प्रदेश—नेपाल तिब्बत, बर्मा और पाकिस्तान इन चार विदेशियों से घिरा हुआ प्रदेश आसाम है। प्राकृतिक सौन्दर्य का धनी 'आसाम प्रदेश' जहाँ पहाड़ों की ऊँची-नीची श्रेणियों से नृत्य और संगीत की धुन करती प्रवाहित नदियाँ, ताल देते झरनों की मधुर थाप, सांय-सांय करते घने जंगल, वर्षा की फुहारें, हरियाली चादर में लिपटी भूमि, शिलांग और गोहाटी की प्राकृतिक सुन्दरता को देखकर मन प्रसन्नता से खिल उठता है।

कहावत है—अधिक सुन्दरता कभी-कभी मुसीबत का देती है। यही हाल सौन्दर्य प्रधान आसाम प्रदेश में भी घटित होता है। भयंकर बाढ़ और भूकम्प के प्रकोप से यहाँ की शान्ति प्रायः भंग हो जाया करती है। ऐसे वातावरण में पल्लवित, पुष्पित मानव बड़े वीर और निर्भीक होते हैं। अहोम जाति द्वारा आक्रमण आसाम के लिए अनहोनी घटना थी जिसने सम्पूर्ण आसाम में अपना आधिपत्य जमा लिया था। उस समय से आसाम का विकास न हो सका।

आसाम प्रकृति सौन्दर्य में ही नहीं, कृषि में भी उन्नतिशील प्रदेश है। चेरापूँजी देश की सर्वाधिक वर्षा का स्थान है। चाय के लहलहाते बगीचे धानों के हरे भरे खेत यहाँ की कृषि के प्रमुख अंग हैं। स्वतन्त्रता के साथ गृह-उद्योग भी प्रारम्भ हुए हैं। भूमि के गर्भ में पाया जाने वाला अपरिमित तेल भण्डार यहाँ की सम्पन्नता का मुख्य हेतु है। विदेशी सीमाओं से घिरा रहने के कारण यहां की स्थिति में अस्थिरता

व्याप्त रहती है। एक सदी से अधिक यहाँ का करीब दो तिहाई भूभाग जिसमें विभिन्न वन जातियों के लोग निवास करते रहे हैं और जो पर्वतों से घिरा है बाहरी दुनियाँ के लिए, अनजान सा रहा है। अंग्रेजी शासन और इसाईयत का भी यहाँ काफी प्रभाव रह चुका है।

विदेशी सीमाओं के निकट होने के कारण यहाँ संघर्ष होना स्वाभाविक है। सुरक्षा की दृष्टि से प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया भारत सरकार को व्यय करना पड़ता है। पिछले दिनों नागाओं के उपद्रव से यहाँ के जन-जीवन को काफी क्षति उठानी पड़ी। परिस्थिति ने 'नागालैण्ड' नाम से अलग प्रदेश का निर्माण भी किया।

स्वतन्त्रता के बाद आसाम को विकास का सुनहरा मौका मिला। यातायात के साधन और सड़कों का निर्माण यहाँ तेजी से हो रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में मेडिकल कालेज तथा अनेकों शिक्षण संस्थाएं यहाँ सुचारू रूप से चल रही हैं। नागा नृत्य मणिपुरी नृत्य तथा ग्रामीण-लोक गीत आदि यहाँ की प्राचीन संस्कृतियों में से हैं। शिलौंग, गोहाटी डिब्रूगढ़, सिलचर, नवगांव डिग्बोई आदि यहाँ के प्रमुख शहर हैं। प्रकृति का सुहावना प्रदेश आसाम (असम) देश की गति के साथ गतिशील हो विकास के मार्ग पर शीघ्रता से बढ़ रहा है, यह इसके सुन्दर भविष्य का ही सूचक है।

गौतम बुद्ध और श्रमण महावीर की विहार-स्थली 'बिहार' प्रारम्भ से ही धार्मिक मान्यताओं का केन्द्र रहा है। बिहार भारत का वह क्षेत्र है जहाँ से बौद्ध एवं जन धर्म का प्रचार प्रसार विश्व के कोने-कोने में हुआ था। अहिंसा की स्वच्छ भूमिका का निर्माण 'जियो और जीने दो' का बीजारोपण इन्हीं दो धर्मनायकों ने किया था जो आज भारत में वट वृक्ष की भाँति छाया हुआ है।

गुप्त सम्राटों द्वारा स्थापित नालन्दा और तक्षशिला विश्वविद्यालय सारे विश्व के शिक्षा केन्द्र थे। कहा जाता है कि चीनी यात्री

ह्वानसांग ने इस विद्यालय में सात वर्ष तक शिक्षा ग्रहण की थी। विश्व के कोने-कोने से आए लगभग दस हजार छात्र इसमें शिक्षा ग्रहण करते थे। १२ वीं सदी में आक्रान्ताओं ने इसे जला कर भस्म कर दिया। फारसी और अरबी की प्राचीन पाण्डुलिपियों के कारण खुदाबख्श लाइब्रेरी दुनिया भर में प्रसिद्ध है।

सातवीं शताब्दी तक बिहार शौर्य व पराक्रम का प्रमुख क्षेत्र रहा था। भारत के यशस्वी सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य इसी प्रदेश के थे। पाटलिपुत्र [पटना] इनकी राजधानी थी। पटना की गिनती भारत के सबसे प्राचीन नगरों में की जाती है। लगातार एक हजार वर्ष तक पटना भारत की राजधानी रहा है।

समय परिवर्तन के साथ बिहार ने भी परिवर्तन देखा है। आज बिहार का वह धार्मिक सौष्ठव नहीं रहा किन्तु उसका वह अतीत आज भी वहाँ के जन-जीवन में निधि के रूप में सुरक्षित है। मुस्लिम तथा अंग्रेजी प्रशासन के अधीन बिहार अपने गौरव को सुरक्षित न रख सका किन्तु समय के साथ वहाँ के लोगों में छिपी संस्कृति के बीज पुनः अंकुरित हो उठे और कोमलता कठोरता में बदल गई। सन् १८५७ ई० के गदर की दबी हुई अग्नि पुनः भभक कर क्रान्ति की भयंकर ज्वाला बन गई। यही संघर्ष भारतीयों की देश के प्रति निष्ठा कर्तव्य और जागृति ने देश को स्वतन्त्रता की नई दिशा दी।

सत्याग्रह के सूत्रधार महात्मा गांधी ने अपना पहला प्रयोग इस राज्य में ही आरम्भ किया, यह बिहार के लिए गौरव की बात है। गांधी जी को बिहार में जिन निःस्वार्थ कर्मठ कार्यकर्ताओं का सहयोग मिला उनमें स्व० डा० राजेन्द्र प्रसाद सर्वोपरि थे। राजेन्द्र बाबू का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति का व्यक्तित्व था वे बिहार के ही नहीं सम्पूर्ण भारत के मार्गदर्शक थे।

जैन और बौद्ध संस्कृति के अनुरूप साहित्य एवं कला का निर्माण भी यहीं हुआ। आज भी गया का बौद्ध मन्दिर, नालन्दा के खण्डहर

वैशाली व राजगृह के जैनमन्दिर इस बात के प्रमाण हैं। वर्तमान समय में अतुल खनिज सम्पत्ति की भूमि बिहार से भारत सरकार को बहुत बड़ा लाभ मिल रहा है। कोयले की खानें, कच्चे लोहे का संग्रह अभ्रक, लाख आदि बिहार की प्रमुख देन हैं। पटना जमशेदपुर—टाटानगर, सिंदरी, बोकारो आज प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गए हैं दामोदर घाटी, गण्डक और कोसी योजनाओं से बिहार में कृषि का भी पर्याप्त विकास हुआ।

विकास की इन भावी सम्भावनाओं के प्रकाश में लगता है कि बिहार का पिछड़ापन और उसकी गरीबी अब अतीत की एक भूल बनकर रह जाएगी। विनोबा भावे का भूदान आन्दोलन एवं गांधी जी का सर्वोदय का क्षेत्र बिहार पुन: अपने विगत इतिहास के गौरवपूर्ण अध्याय की पुनरावृत्ति पर है।

ग्वालियर इन्दौर, उज्जयनी सांची, बुन्देलखण्ड जैसे ऐतिहासिक स्थानों का मध्यप्रदेश' जहाँ की मिट्टी के प्रत्येक कण के साथ इतिहास के लम्बे पृष्ठ जुड़े हुए हैं प्राकृतिक सौन्दर्य का भी सुरम्य स्थल है।

शक, कुशाण, यवन हूण, आभीर आदि विदेशी जातियों का युद्ध-स्थल पल्लव, चालुक्य, सातवाहन इक्ष्वाकु, गुर्जर व मराठों की संघर्ष-भूमि महाकवि कालिदास के अमर साहित्य निर्माण की काव्य भूमि; मध्य प्रदेश भारत का हृदय है।

विन्ध्याचल, सतपुड़ा पर्वत श्रेणियों के साथ ही विशाल मैदान की यह भूमि कृषि के लिए भी उपयुक्त है। पंचमढ़ी तो अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए अनुपम है। शहरी वातावरण से दूर का यह स्थान शान्ति एवं एकता की चाह रखने वालों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। झरनों की प्रवाहित जल धाराएं इस शिखरों का शृंगार हैं।

सांची का स्तूप एवं भग्नावशेष, भोपाल उज्जयिनी एवं खजुराहो

के मन्दिर, भिलाई का इस्पात कारखाना एवं अन्य औद्योगिक केन्द्र मध्य प्रदेश के आकर्षण हैं।

मध्यप्रदेश के सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व के रूप में सम्राट विक्रमादित्य 'न्याय के अवतार' विशेषण से विश्व प्रसिद्ध हो गए। उन्हीं से विक्रम सम्वत् का नाम भी चला।

महाकवि कालिदास का मेघदूत, शकुन्तला आदि अन्य संस्कृत साहित्य भारतीय साहित्य की अमूल्य निधियों में से हैं। आज कालिदास का नाम संसार के श्रेष्ठतम कवियों के साथ लिया जाता है।

मध्य-प्रदेश काफी समय तक संघर्षों की भूमि रही यहाँ की घटनाएं पूरे देश के आकर्षण का केन्द्र थीं। संघर्षों के बावजूद भी प्रदेश में कला का निर्माण हुआ है और यह बढ़ता रहा है। हिन्दी साहित्य को भी प्रदेश ने पर्याप्त योग दिया है।

न्यायप्रिय शासक विक्रमादित्य के कारण आज भी उज्जयिनी की गरिमा महिमावान् है। उज्जयिनी माघ, कालिदास तथा अन्य अनेक कवियों साहित्यकारों की कर्म-भूमि रही है। कहा जाता है कि उस समय भारत भर में संस्कृत-साहित्य का प्रमुख केन्द्र यहीं था। यहाँ की संस्कृति के साथ कला का सुन्दर गठबन्धन रहा है। खजुराहो, सांची आदि के मन्दिर, जैन, बौद्ध मठों की सूक्ष्म कारीगरी इसकी साक्षी हैं।

खनिज उत्पादन की दृष्टि से मध्य प्रदेश में हीरे, कोयले और सोने की खानें भी हैं। वर्तमान में यहाँ भी विकास योजनाएं काफी पनप रही हैं। भोपाल, ग्वालियर, रायपुर, इन्दौर आदि यहाँ के प्रमुख शहर हैं।

वैदिक काल का 'मध्य-देश' जिसे आज 'उत्तर प्रदेश' कहा जाता है, गंगा-यमुना जो सदा बहार नदियों के संयोग से अपनी उपजाऊ भूमि के लिए प्रसिद्ध है। मुस्लिम काल में इसी भूभाग को सूबा-ए-आगरा व अवध (संयुक्त प्रदेश आगरा व अवध) के नाम से जाना जाता था।

प्राचीन संस्कृति, कला, साहित्य आदि में यह प्रदेश अतीत में काफी उन्नतिशील रहा है। यही वह प्रदेश है जहाँ रामायण 'महाभारत' जैसे उच्चकोटि के महाकाव्य लिखे गए हैं। रामायण म आदर्श पुरुष राम का चरित्र और महाभारत में योगेश्वर कृष्ण के चरित्रों का वर्णन हुआ है। रामायण के रचयिता वाल्मीकि, तुलसीदास और महाभारत के रचयिता व्यास हैं। इनके साहित्य, साहित्य की जहाँ अमूल्य निधियाँ है वहाँ भारतीय संस्कृति एवं आदर्श के प्रतीक ग्रन्थ भी भक्ति का अमर स्रोत जैसा इन ग्रन्थों में परिलक्षित होता है, वैसा अन्यत्र नहीं।

वाल्मीकि संस्कृत के आदिकवि माने जाते हैं। तुलसी, सूर, कबीर रैदास रहीम केशव रसिक, जायसी आदि की अन्तरात्मा से उठी आवाज भक्तिरस के गीत बन गई। देश के कोने-कोने में आज भी इन गीतों की मधुर स्वर लहरी सुनाई देती हैं।

यहाँ की नारियों की गौरव गाथा उनके सतीत्व तथा देश रक्षा आदि में शौर्य पराक्रम की पृष्ठभूमि में बलिदान और त्याग के लिए प्रसिद्ध हैं। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का अंग्रेज-सेनाओं से अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना विश्व के इतिहास में भारी गौरव की अमिट कहानी बन गई है।

दक्षिण भारत की भाँति यहाँ भी तीर्थ स्थानों मन्दिरों की बहुलता है। तीर्थ स्थानों के मन्दिर कला के सुन्दर उदाहरण हैं। हरिद्वार, बद्रीनाथ अयोध्या, मथुरा काशी के मन्दिर यहाँ हिन्दू संस्कृति के ताज बन गए हैं वही आगरा का ताजमहल फतेहपुर सीकरी के महल लखनऊ की इमारतें मुगलसाम्राज्य के कला प्रेम के सर्वश्रेष्ठ नमूने हैं। ताजमहल जसी सुन्दर कलाकृतियाँ आज भारत की ही नहीं विश्व की नामी हुई कृतियों में से है वह एक ओर जहाँ कला की श्रेष्ठतम कृति है वहीं दूसरी ओर प्रेयसी की मोहब्बत की यादगार भी। मुगलकालीन इमारतों को देखकर प्राचीन कारीगरों के हस्त-कौशल पर आश्चर्य हो उठता है।

आध्यात्म और नीति के महान् उद्बोधक राम एवं कृष्ण की जहां यह लीला स्थली रही है, वहीं आधुनिक शताब्दी के महान् रत्न जवाहर की जन्मभूमि भी। जो राजनीति के क्षेत्र में विरल शान्ति के एक तेजस्वी नक्षत्र बनकर रह गए। गोविन्द बल्लभ पंत राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, महामना मदनमोहन मालवीय लालबहादुर शास्त्री जैसे सुयोग्य नेताओं का जन्म तथा कार्यक्षेत्र भी यही प्रदेश रहा है।

अतीत में उत्तर प्रदेश आर्यों का गढ़ रहा था। सम्भी अवधि तक इस पर क्षत्रिय नरेशों का साम्राज्य रहा। अशोक हर्ष, गुप्त साम्राज्यों के पश्चात् पृथ्वीराज चौहान जयचन्द आदि इसके शासक रहे हैं। कहा जाता है कि जयचन्द ने पृथ्वीराज से बदला लेने की नीयत से मुहम्मद गौरी को युद्ध की सहायता के लिए भारत बुलाया था। पृथ्वीराज चौहान का अन्त तो हुआ लेकिन विश्वासघाती जयचन्द भी उन्हीं के साथ विलीन हो गया। भारत में मुगलसाम्राज्य का सूत्रपात यहीं से प्रारम्भ होता है।

मुगलों के काल में यहाँ कला का अभूतपूर्व विकास हुआ। इमारतों और स्मारकों के शौकीन मुगलों ने समूचे उत्तर प्रदेश को कलात्मक इमारतों से भर दिया, जो आज भी राष्ट्रीय सम्पत्ति धरोहर के रूप में सुरक्षित हैं। लाल पत्थरों का विशाल दुर्ग आगरे का लाल किला फतेहपुर सीकरी की आलीशान इमारत जिसका बुलन्द दरवाजा १७६ फीट ऊंचा है। प्रत्येक जिले में निर्मित मस्जिदें लखनऊ की इमारतें और बगीचे मुगल शासकों की कला-प्रियता के प्रतीक हैं। लखनऊ जो उत्तर प्रदेश की राजधानी भी है, भूल भुलैया केसर बाग म्युजियम तथा रेलवे स्टेशन देखने लायक हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में लखनऊ इलाहाबाद, आगरा अलीगढ़ बनारस गोरखपुर रुड़की यू० पी० एग्रीकल्चर (पंतनगर नैनीताल) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। कानपुर, लखनऊ, आगरा वाराणसी, इलाहा-

बाद, मेरठ मथुरा, बरेली, गोरखपुर और झांसी यहाँ के प्रगतिशील शहरों में से हैं।

औद्योगिक प्रगति में उत्तर प्रदेश शीघ्रता से बढ़ रहा है। रिहन्द बांध से सिंचाई के अतिरिक्त भारी मात्रा में विद्युत का भी निर्माण हो रहा है, अल्युमिनियम सीमेन्ट उद्योग यहाँ की प्रगति के लक्षण हैं। शक्कर उत्पादन में यह क्षेत्र भारत में सबसे आगे है। यहाँ की मुख्य उपज गेहूँ चावल ज्वार बाजरा चना, उड़द और अरहर है। गन्ना यहाँ की सबसे अधिक पैदावार है। यहाँ की भाषा खड़ी बोली व्रजभाषा और अवधी है। अवधी व्रजभाषा के लोकगीत एवं लोक कथाएं आज घर घर में अतीत का स्मरण करा रही हैं।

भारत की राजधानी दिल्ली को यदि भारत का दिल' कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। जिस प्रकार शरीर पर 'दिल' का साम्राज्य होता है उसी प्रकार भारत पर दिल्ली का साम्राज्य है। यदि पूरे भारत की कला-संस्कृति साहित्य आदि के आधुनिक स्वरूप को देखना है तो दिल्ली-दर्शन पर्याप्त होगा।

यहाँ विमुखलित पत्थर की चट्टानें भग्नावशेष इमारतें विगत में रोमांचकारी इतिहास के पृष्ठों की याद दिलाती हैं। कुतुबमीनार की गगनचुम्बी इमारत लालकिले की सुदृढ़ दीवारें कलात्मक कला अशोक स्तम्भ जामा मस्जिद हुमायूं का मकबरा, चतुर्दिक वन दरवाजे और सुरंगें आदि जहाँ कलाकृति के बेजोड़ नमूने हैं, वहीं रोमांचकारी ऐतिहासिक घटनाओं के ज्वलन्त प्रमाण है। महाभारत काल से लेकर कई शताब्दियों तक इस पर आर्यों का आधिपत्य रहा जो अपनी कला संस्कृति और साहित्य के लिए विश्व-विख्यात थे। उसके बाद इसकी बागडोर मुगल सम्राटों के हाथ में आई। दिल्ली के माध्यम से मुगल शासन देश के लगभग दो-तिहाई भागों पर हावी हो गया। याद-गारो मस्जिदों, और आलीशान इमारतों के शौकीन मुगल शासकों ने

अपनी कला और संस्कृति से दिल्ली को आच्छादित कर दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कूटनीतिक चाल से जब सारे देश पर अंग्रेजी हुकूमत का एकाधिकार हो गया उस समय भी दिल्ली काफी विकसित हुई। धीरे धीरे विस्तारवाद से विदेशीपन छा गया। प्राचीन दिल्ली से हटकर नई दिल्ली का निर्माण इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

नई दिल्ली का कनाट-प्लेस चतुर्दिक आधुनिक ढंग की एक सरीखी बनी इमारतों, कला की दृष्टि से गले उद्यान आदि ने प्राचीन रंगों के साथ नवीन रंग बिखेर दिया है। दिल्ली के भव्य भवन, चल चित्र गृह, रेस्टोरेन्टस् आदि की आधुनिक साज-सज्जा दर्शकों का मुग्ध कर देती हैं। राष्ट्रपति भवन, पार्लियामेंट हाउस, तीनमूर्ति भवन, इण्डिया गेट, सचिवालय जहाँ राजनैतिक व्यवस्था के कार्यक्षम हैं, वहीं दर्शकों के लिए कलाकृति की अनुपम वस्तु भी। प्रतिवर्ष सहस्रों व्यक्ति इसे देखने मात्र के लिए दिल्ली आते हैं।

शिक्षा में दिल्ली का स्थान भारत में सब प्रथम है। यहाँ के उच्च शिक्षा केन्द्र विश्व के लिए उपादेय हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दिल्ली भारतीय राजनैतिक खिलाड़ियों की क्रीड़ा स्थली बन गई है। यहाँ के दाव-पेच की चर्चा झोंपड़ी से लेकर महलों तक व्याप्त है।

काश्मीर का प्राकृतिक वैभव हिमालय-प्रदेश का कठोर जीवन, पंजाब हरियाणा का संघर्ष, राजस्थान की वीरता, गुजरात का राष्ट्र भाव, महाराष्ट्र की प्रगति, गोवा का स्नेह, केरल की धर्मनिष्ठा, मैसूर की सम्पन्नता, शांति, तमिलनाडु का स्वाभिमान, आन्ध्र की कृषि, उड़ीसा की कला, बंगाल का साहित्य, आसाम की निर्भीकता, बिहार की धार्मिकता, मध्यप्रदेश का इतिहास, उत्तर प्रदेश का गौरव एवं दिल्ली

का वैभव, प्रेरणा का विषय है।

हिमालय पर्वत से निकली की नसहटी से उत्पन्न जल वासी सिन्धु, गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र आदि नदियां विस्तृत भू भाग पर फैली हुई

अगाध जलराशि को अपने में समाए-जीवनरस को प्रवाहित करती हुई ऐसे लगती है जस माँ भारती अपने वक्ष म अपन सुत का दूध संजोए हो और वह जीवन-रस समस्त जनता क जीवन क लिए समरूप से प्रवाहित हो रहा हो !—लेखनी थम जाती है उस सुन्दरता, एवं संस्कृति के वैभव में आनन्दित होकर। अचेतन वस्तुओं में भी चेतनता का संचार कर देती है ऐसा है हमारा भारत !

पक्षिराज मयूरों क सुन्दर झुण्ड मिट्टी के रंग म रंगे रेगिस्तानी जहाज ऊँट विविध वर्णों से सजे सींगों वाल वल, मदमस्त कुंजर वनराज सिंह, वायु वेगगामी चेतक से अश्व विविध रंगों के पशु पक्षी। कैसा सुन्दर आकर्षण !

प्राकृतिक सुन्दरता एवं निर्मित सुन्दरता के साथ ही भारतीय सभ्यता एव संस्कृति भी अनेकों से अच्छ ही रही है। संक्षिप्त में कहें तो भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता हिमालय के समान ऊँची विशाल और अडिग हिन्द महासागर स गहरी समृद्ध तथा पृथ्वी के समान गम्भीर और प्राचीन है। भारत ने सदा विश्व का मार्ग-दर्शन किया जगत गुरु का सम्मान पाया। भारत ने जहाँ भौतिक विकास किया, वहीं आध्यात्मिक विकास की शृंखला भी कायम की और इसीलिए प्राचीनता में समकालीन होने पर भी परसिया ईजिप्ट ग्रीक अरब, चाइना मध्य एशिया और मैडिटरेनियन की सभ्यता से भी भारतीय सभ्यता सदा अग्रणी रही है। सिंधु घाटी की सभ्यता ५००० वर्ष पुरानी सभ्यता की प्राचीनता एवं श्रेष्ठता का प्रबल प्रमाण है। प्रो० चाईल्ड के शब्दों में—

'Indus vally civilization represents a very perfect adjustment of human life to specific enviroment that can only have resulted from years of patient effort And it has endured it is already specifically Indian and forms the basic of Modern Indian culture' —Prof Childe.

भारत के जन जीवन में बराबर उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। विभिन्न राज्यों में संघर्ष समाजों का विवाद विजय ने पराजय पर अपनी सत्ता स्थापित की। एक स्थान के जन दूसरे स्थान पहुँचे विदेशी जन भी यहाँ के जन-जीवन में आ मिले। विभिन्न सभ्यताओं के नैकट्य ने एक नवीन समन्वित संस्कृति को जन्म दिया। एक संस्कृति दूसरे के प्रभाव से बच न सकी। आचार एवं विचारों में भी अनुकूल प्रतिकूल परिवर्तन आए। मूल वही रहा सरिता वही प्रवाहित रही किन्तु उसमें अन्य स्थानों नदी-नालों का पानी भी मिलता रहा एवं यह सब उसकी गति को और अधिक तीव्र करने के हेतु बन गए।

पण्डित नेहरू के शब्दों में—

'It is facinating to find how the Bergalis the Marathas the Gujaratis the Tamils the Andhras the Oriyas the Assamese the Canarese the Malayalis, the Sindhis the Punjabis, the Pathans the Kashmiris the Rajputs and the great central block comprising the Hindustani speaking people have retained their peculiar characteristics for hundreds of years, have still more or less the same virtues and failings of which old tradi tion or record tells us and yet have been throughout these ages distinctivelp Indian with the same national heritage which showed itself in ways of living and philosophical atutude of life and its problems

अनेकानेक प्रभाव विदेशी आक्रमण, लम्बे समय तक भिन्न सभ्यता एवं संस्कृति की सत्ता में रहकर भी भारत ने अपना अपनत्व सुरक्षित रखा। प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति आज भी हमारे जन जीवन में घुली मिली है। भारतीय संस्कृति बदली अवश्य, किन्तु उसका मूल वैसा ही

रहा। संघर्ष एवं विघटन के कठिन समय में भी संस्कृति एवं सभ्यता की निजी शक्तियों ने उसे सुरक्षित बनाए रखा।

साहित्य के क्षेत्र में संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद इसी धरा की देन हैं। ऋग्वेद संसार का सर्वप्रथम ग्रन्थ है। जिन्हें २००० से २५०० वर्ष पूर्व की रचनाएँ माना जाता है। प्रो० मैक्समूलर के शब्दों में ऋग्वेद—'The first word spoken by the Aryan man है। वेद एवं उसके बाद की रचनाएं विश्व की प्राचीनतम साहित्यिक कृतियां मानी जाती हैं। संसार का प्रथम व्याकरण, नीति शास्त्र अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों की रचना का श्रेय भारत को ही है।

'History of Sanskrit literature संस्कृत साहित्य का इतिहास पुस्तक में Prof Macdonell प्रो० मैकडोनेल लिखते हैं—'The importance of Indian literature as a whole consists in its originality, when the Greeks towards the end of the fourth century B C. invaded the North West, the Indians had already worked out a national culture of their own, unaffected by foreign influances.'

मनुस्मृति, वाल्मीकि कृत रामायण व्यासकृत महाभारत गीता कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र साहित्य की अमर कृतियाँ ही नहीं शांति एवं नीति की प्रमुख प्रेरणा सोपान बन गई हैं। १२ मार्च १९५४ को साहित्य एकादमी के उद्घाटन भाषण में सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन ने कहा था—Literature is the channel between spiritual vision and human beings, the poet is a priest of the invisible world a divine creator, a kavi. He is not mere entertainer but is a prophet who inspires and expresses in varied ways entire aspirations of the society to which he belongs

अनेकानेक साहित्यकारों की लेखनी से गर्वित इस भूमि ने अनेकानेक दार्शनिक सुधारवादी नेताओं महात्माओं को भी जन्म दिया है। व्यास वाल्मीकि, कौटिल्य, तुलसी, सूर, पम्पा, मात्र लेखक ही नहीं अपितु दार्शनिक भी रहे। महाराजा अशोक सम्राट चन्द्रगुप्त, राजा भोज महाराज विक्रमादित्य आदि मात्र शासक ही नहीं, अपितु समाज सुधारक अहिंसक न्यायप्रिय भी रहे। महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी पृथ्वीराज चौहान, रानी झांसी कित्तुर चिन्नम्मा, टीपू सुल्तान आदि मात्र राजा ही नहीं स्वतन्त्रता, स्वाभिमान के प्रबल हिमायती भी रहे। महात्मा गांधी वल्लभ भाई पटेल नेताजी सुभाष वीर भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद' मात्र नेता ही नहीं शांति के अग्रदूत भी रहे। गांधी, नेहरू शास्त्री जैसे नेताओं ने विश्व को बता दिया कि शान्ति के उस पार अहिंसक शान्ति भी किस तरह देश के इतिहास का निर्माण कर सकती है।

अपनी धनुर्विद्या में दक्ष अर्जुन एकलव्य, पृथ्वीराज चौहान आज भी कीर्ति के प्रतीक बने हुए हैं। चन्दवरदायी का वह पद्य—

'चार बांस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमाण।
ता ऊपर सुल्तान है मत चूको चौहान॥'

धनुर्विद्या में भारतीयों की दक्षता का जहां ठोस प्रमाण है वहीं स्थिति के प्रति सजगता का भी।

विश्व शांति तथा मानवता का मार्ग बताने वाले महापुरुष राम, कृष्ण महावीर-बुद्ध की यह भूमि रही है जिन्होंने देश को ही नहीं समस्त संसार को शांति, नीति ज्ञान चरित्र आदि मानवता के मार्ग का सम्यक दर्शन दिया। संस्कृति, सभ्यता आदर्शवादिता जनहित यहां के संस्कारों का स्वरूप रहा है और अपने सत्य के लिए मन, वाणी, कर्म-धर्म से भी वे सदा सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार रहते हैं। शोषण नहीं, न्याय पसंदता या ब्राह्मण के लिए अपने शरीर के कवच चीर कर देने

वाल दानवीर कर्ण, शरणार्थी कपोत की रक्षा के निमित अपने देह से मांस को काट कर तुला पर देने वाले शिवि, प्रजा की खुशहाली के लिए निर्दोष पत्नी सीता का परित्याग कर देने वाले राम जैसे प्राणप्रिय पुत्र को वनवास देकर—

"रघुकुल रीति सदा चलि आई
प्राण जाय पर वचन न जाई।"

नीति का निर्वाह करने वाले राजा दशरथ सत्य के रक्षार्थ— पत्नी। पुत्र का दारुण विछोह सहन कर डोम की पराधीनता स्वीकार करने वाले सत्यवादी हरिश्चन्द्र पितृआज्ञा पालन के लिए मातृच्छेदन करने वाल परशुराम, गौ रक्षार्थ प्राणार्पण करने वाले रघुराज, भारतीय गौरव गरिमा के सूर्य थे। जिनके आदर्श और त्याग, की महानता की गाथाओं से इतिहास के निर्जीव पृष्ठों म भी सजीवता परिलक्षित होती है।

यह निर्जीव पृष्ठ ज्ञान स्मृति को स्मरण एवं सुरक्षा का विषय बनाते हुए स्वयं सुरक्षा के विषय बन गए! रामायण गीता आगम, त्रिपटक जीवाजीव तत्त्वदर्शक नचिकेतोपाख्यान आत्मा-परमात्मा विवेचक ईश्वरोपनिषद् नीतिशास्त्र का घटना प्रधान विष्णुशर्मा कृत पंचतन्त्र' धर्म नीति वर्णक मनुस्मृति' आज भी जन-जन की प्रेरणा एवं स्फूर्ति के स्रोत बने हुए है। विनोबा का भूदान सर्वोदयपथ, तुलसी का अणुव्रत मार्ग आज भी मानव की शांति की मंजिल तक पहुँचाने के प्रयास में लगे हैं। यत्र-तत्र कन्दराओ में अपनी साधना, तपस्या करते हुए ऋषि मुनि जन-जीवन मे नैतिकता का प्रचार करते हुए सन्यासी महात्मा आज भी भारतीय ऋषि परम्परा के प्रबल प्रहरी बने हुए है। बड़े-बड़े, दार्शनिक वैज्ञानिक विद्वान-लेखक समाज सभी आज भी अतीत के उन आदर्शों को यथार्थ म बनाए हुए है।

हिन्दू बौद्ध जैन इन प्रमुख धर्म-मान्यताओं का भारत जहाँ जन्म स्थल रहा, वहीं उसकी समन्वयात्मक विशेषता ने इस्लाम, ईसाई, अन्य अनेक

मान्यताओं को भी स्थान दिया । वे सभी जो भारतीय साम्प्रदायिक मान्यता से बाहर के थे जैसे क्रिश्चियन, पारसी, मुस्लिम, आदि समय के प्रवाह के साथ ही पूर्णत: भारतीय बन गए । अनेकानेक धर्म सम्प्र दाय विभिन्न भाषा रीति-रिवाज पहनाव, आदि के बावजूद भी इसकी एकता अखण्डता देश की विशेषता ही रही है । महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर के 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का यह देश जिसका लक्ष्य सच्चिदानन्द रहा है जो भारतीय संस्कृति, सभ्यता साहित्य धर्म समाज और दर्शन का प्राण है ।

भारतीय संविधान के Preamble के अनुसार 'The preamble of the Constitution proclaims India as a Sovereing, Democratic, Republic The aim of constitution is to secure for all its citizens, Justice socıal economical and political liberty of thought, expression belief faith and worshpi equality of status and of opportunity and to promste among then all Fraternity, assuring the dignity of the individual and unity of Nation

भारतीय संविधान भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न लोकतन्त्रा त्मक गणराज्य घोषित करता है । जिसका लक्ष्य है-समस्त नागरिकों के लिए सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय विचार अभिव्यक्ति विश्वास धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता तथा व्यक्ति का सम्मान और राष्ट्र की एकता ।

आज जनतन्त्र नारी की स्वतन्त्रता का जहाँ हिमायती रहा है, वहीं उस सुदूर प्राचीन में यहाँ नारी को समान अधिकार भी प्राप्त थे उसे अर्धांगिनी समझा जाता था । गार्गी, महर्षि वशिष्ट की पत्नी अरुंधती स्पष्ट धर्मवादिनी भी थी । अहल्या सीता, द्रौपदी, दमयन्ती जैसी आदर्श नारियों का यह देश रहा है ।

'कार्येषु दासी, करणेषु मंत्री, रूपेण लक्ष्मी क्षमया धरित्री।
भोज्येषु माता शयनेषु वेश्या षट्कर्मयुक्ता कुलधर्मपत्नी।'

यह हमारे देश की नारियों की विशेषता रही है। वह जहाँ विग्रह का कारण बनती है वहीं स्फूर्ति तथा प्रेरणा की केन्द्र शक्ति भी। धर्म, जाति लिंग का भेद किये बिना सबको समानता के स्तर से आंकना भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है।

यहाँ की चित्रकला एवं शिल्पकला उच्चश्रेणी की रही है। अजन्ता ऐलोरा आबू देलवाड़ा ताज महल मदूर-मीनाक्षी, बेलूर हलेबिड कुतुबमीनार जैसी अनेक कलात्मक इमारतें एवं मन्दिर जिनमें शिल्प तथा चित्रकला का सुन्दर संगम है विश्व में अपना सानी नहीं रखते। ये प्रस्तर मूर्तियां जिन्हें देखकर अपनी समृद्ध प्राचीनता पर गर्व होता है और श्रद्धा से अनायास ही मस्तक झुक जाता है ऐसा लगता है मानो ये निर्जीव प्रस्तर प्रतिमाएं एवं दिवारें आने वाले युग से कहना चाहती हैं इन सकड़ों कलाकारों के बलिदान के श्रद्धा की कहानी जिन्होंने निर्जीवता में सजीवता का संचार कर आगन्तुक शिल्पी-वर्ग के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। मन्दिर एवं यह भव्य इमारतें जहाँ यहाँ के कला प्रेम की परिचायक हैं, वहीं प्रकृति सहयोग से मानव निर्मित निशात बाग, काश्मीर का शालीमार बाग मैसूर का वृन्दावन उपवन राजस्थान—उदयपुर की सहेलियों की बाड़ी जमशेदपुर का नेहरू उद्यान मानव की प्रकृति प्रेमिता के सूचक हैं।

छोटे-छोटे ग्राम एवं विशाल नगरों में बसा भारत अपने में पूर्ण है। कलकत्ता, बम्बई, हैदराबाद दिल्ली मद्रास बैंगलूर जहां औद्योगिक केन्द्र हैं वहाँ देश की विभिन्न संस्कृतियों के संगम स्थान भी। जयपुर चंडीगढ़ श्रीनगर, मैसूर जहाँ नवीन संस्कृति के प्रतीक हैं, सुन्दरता के बहु चर्चित शहर भी। भारत की धरती कृषि प्रधान रही है। शहर की जनता जहाँ देश को कपड़ा एवं अन्यान्य साधन देने के कार्य में रत

रही है, वहाँ ग्रामीण जनता देश को रोटी देने के कार्य में। हाथीदांत, चन्दन खुदाई कसीदाकारी जरी का काम, सुन्दर पटोला, हीरे एवं मूल्यवान नगों से आभूषित स्वर्ण-आभूषण आज भी अपना सानी नहीं रखते। विविध कलात्मक कृतियों से संग्रहीत म्यूजियम एवं राजमहलों का गरिमायुक्त ऐश्वर्य हमें आज भी मजबूर करते हैं अपने अतीत के उन वैभवपूर्ण पृष्ठों की पुनरावृत्ति के लिए।

देश के त्योहार मात्र परम्परा की द्योतक ही नहीं, अपने में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक आदर्श संजोए हुए हैं। राखी के दो धागे शत्रु को भी मित्र बना देते हैं। रानी कर्मवती ने हुमायूँ को राखी भेजकर जहाँ भाई बनने का निमंत्रण दिया, वहीं धागों के इतिहास ने हुमायूँ को बहिन की रक्षा के लिए प्रेरित कर दिया। एक ही राष्ट्र के हिन्दू-मुस्लिम एकता का इससे बढ़कर उदाहरण क्या हो सकता है ?

आमोद प्रमोदमय वैभवपूर्ण त्योहार; बसन्त के गण-गौर, वर्षा के प्रथम पावस्नान में आने वाले 'तीज' के त्योहार, धनी-निर्धन रेखा को पाटने वाला उत्साहभरित त्योहार 'होली', प्रकाश प्रगति का सूचक दीपों का त्योहार 'दीवाली' भाई बहिन प्रेम का प्रतीक' रक्षा-बन्धन रमजान, मोहर्रम उर्स ओणम, पोंगल दशहरा शिवरात्रि, जन्माष्टमी गणेश चतुर्थी आदि त्योहारों का प्रसन्न वातावरण। भरत नृत्यम् घूमर गरबा गोपी मणीपुरी आसामी भांगड़ा ग्राम्यनृत्य के घुंघरुओं की झनकार वाद्य एवं संगीत। हरे हरे खेतों और खलिहानों के बीच वृक्षों से आच्छादित जंगल और पहाड़ों के बीच रंगीन वेश भूषा में खूबसूरत स्वस्थ कृषक एवं ग्वाल बालाएं शहर के सपनों में खोई हुई सभ्य सजधजयुक्त युवतियाँ। प्रकृति के किरीट यहाँ के भीमकाय कोष और धन के आगार जगत प्रसिद्ध योद्धा युवक बुद्धि, गम्भीरता, व विवेक के प्रतीक विद्वज्जन जिनके साहस एवं बुद्धि की प्रशंसा करते विश्व थकती नहीं। शायद ही धरती का कोई और भू भाग ऐसा हो जहाँ

सुन्दरता, वीरता, कला एवं बुद्धि का इतना सुन्दर समन्वय हुआ हो। इन सबने मिलकर भारत की उच्च परम्परा को काव्यमय बना दिया है।

'जियो और जीने दो' 'सादा जीवन उच्च विचार', सर्व्व सार-भूपम्' वसुधैव कुटुम्बकम्' 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतम् गमय' के पावन सिद्धान्तों का प्रहरी भारत अपनी अनोखी परम्पराओं मान्यताओं के इन्द्र धनुषी रंगों और आदर्शों का धनी रहा है। इन सबका प्रतीक राष्ट्रीय तिरंगा ध्वज ससम्मान फहरा रहा है। आज भी जब रणभेरी बजती है तो देश का हर नागरिक किसी न किसी तरह देश की रक्षा के पुनीत कार्य में अपने आपको जोड़ लेता है।★

पुरखों के स्वप्नों का
भारत
किस ओर ?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जन-मानस में एक नई करवट सी बदलते हुए युग के साथ देश की परम्परा एवं मान्यताओं ने भी नया मोड़ लिया; देश स्वतन्त्र था स्वतन्त्र है, अपने ही द्वारा निर्मित आचार-विचार की जिन्दगी जीने के लिए।

सैकड़ों वर्षों की पराधीनता के बन्धनों से मुक्ति पाकर देश का बच्चा-बच्चा प्रसन्नता की लहरों में हिलोरें लेने लगा; दीपमालिकाएं जगमगा उठीं पक्षियों ने मधुर गीत छेड़ा साज और संगीत के स्वर गूंज उठे शृंगार शोभित होने लगा; गणतन्त्रीय सरकार बनी तत्काल ही सुयोग्य नेताओं द्वारा प्रगतिमूलक रूपरेखा तैयार की गई और उस पर अमल किया जाने लगा। सुयोग्य वातावरण को पाकर देश का ध्यान खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त करने की दिशा में गया। विशालकाय राजभवन दीर्घकाय जल स्रोत बड़े लम्बे-लम्बे रेल-मार्ग यातायात के आधुनिकतम प्रचुर साधन मिलें और कल-कारखाने अन्नोत्पादन के क्षेत्र में आधुनिक उपकरणों का योग शिक्षा के क्षेत्र में नवीन दिशा। एक ओर विकास के इन मार्गों को जहाँ प्रशस्त किया गया है, वहीं अराजकता, हड़तालें अनुशासन हीनता ने देश की आत्मा का ही दाव ओर बाला है स्वतन्त्रता के नाम पर कानून के जो बन्धन ढीले किए

गए, लोग स्वच्छन्द बनने लगे। देश के नागरिकों की गतिविधि में खोखलापन आ चुका है, दिग्भ्रम न बढ़ा अवश्य जा रहा है, किन्तु मंजिल की ओर नहीं मंजिल से विपरीत। पूर्व और पश्चिम का, परा और अपरा का, आचार और विचार का भूत और भविष्य का, जो समन्वयात्मक चिंतन हमारी संस्कृति म था खो-सा गया है, जीवन की गति कुण्ठित हो चुकी है और निराशा जीवन का क्रम बन गई है।

आज देश का रक्षक कलाकार, नेता शिक्षक अगुआ पूजा और प्रशस्ति चाहता है। लगता है हमारी बौद्धिक-शक्ति क्षीण होती जा रही है उस पर किसी और का अंकुश है आधार विचार कोई और संचालित कर रहा है, शारीरिक गुलामी न सही पर मानसिक गुलामी आज भी हमारे विचारों पर हावी है अपने ही अस्तित्व एवं भावनाओं से हमारा विश्वास उठ-सा रहा है सत्य वही लग रहा है जो सदियों से चला आ रहा है समर्थन उसी को मिल रहा है जो प्राचीन है प्रशंसा उसी की हो रही है जो परम्परानुगत स्वर में गा रहा है, झूठे आदर्श दिखावे तथा महत्व-हीन परम्पराओं की भूल-भुलैया में हम दिन-व दिन फँसते जा रहे हैं, हमारा स्वतन्त्र चिंतन छिन-सा गया है, हमारी ही संस्कृति एवं सभ्यता से हमें दूर करने का जनव्यापी षड्यन्त्र किया जा रहा है। खेत से खलिहान तक मजदूर से मालिक तक, कुटीर स कोठियों तक जनता से जननायक तक धर्मानुयायियों से धर्माचार्यों तक सारा वातावरण दूषित बन चुका है। कागजी मस्तिष्क की कागजी-योजनाओं के कागजी घोड़े दौड़ाए जा रहे हैं काम कम, बातें अधिक हो रही हैं, हाथ पैर चक्षु सब 'काम-बन्द' हड़ताल पर है, और इनकी इस 'काम बन्द अवधि में जिह्वा ने अधिक गति से काम करने का निर्णय लिया है कम-श्रम में अधिकतम सुख की कल्पना देश को अकर्मण्य और अपाहिज बना रही है।

ऋषि, मुनि तपस्वी, महात्मा बलिदानी शहीदों, शिक्षित शिक्षकों

के इस देश में राम कृष्ण महावीर बुद्ध के इस देश में, बापू बोस, नेहरू, शास्त्री के इस देश में, समता का विश्वास आत्म विश्वास, शक्ति आत्म-शक्ति ज्ञान आत्म-ज्ञान सो सा गया है। अल्प-स्वार्थ के पीछे देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न, मात्र प्रश्न रह गया है। दानवीय शक्तियां मानवीय शक्तियों पर हावी हो रही हैं। तोड़-फोड़, हिंसात्मक आन्दोलन राष्ट्र के रीढ़ की हड्डियां तोड़ रही हैं। भारत माँ के पुत्र ही माँ भारती के स्वप्नों को वीरान करने में लगे हैं। ऐसे एक नहीं, अनेकों हेतु हैं, जिनसे देश की हर दैनन्दिन प्रवृत्ति अभिशाप से आक्रान्त है।

एक ओर प्रजातन्त्र तथा राष्ट्रीयता की दुहाई देते हुए इसे जब जन राज्य 'भारत राष्ट्र' कहा जाता है वहीं देश के ये नागरिक अपने विगत इतिहास के उन सुन्दर अध्यायों को भूल कर अपनी शक्ति देश के सही विकास में नियोजित न कर, निजी विकास में व्यवहृत कर रहे हैं।

आज हम देख रहे हैं, कहीं अन्न का अभाव है तो कहीं काला बाजार कहीं प्रान्त प्रान्त म अपनी सीमा के लिए लड़ाई तो कहीं भाषाई आन्दोलन कहीं किसी को गिराने के लिए षड्यन्त्र तो कहीं मंत्री पदवी के लिए झूठे फतवे कहीं आदर्श और शांति के नाम पर कानून की अवहेलना एवं हिंसात्मक आन्दोलन, तो कहीं कानून तथा धर्म के नाम पर असमानता क्या राष्ट्र निर्माण के लिए इसी राजनैतिक कदम की अपेक्षा थी?

जाति और धर्म के नाम पर एक ऊंच है तो एक नीच एक पूज्य है तो एक अस्पृश्य, मन्दिरों में प्रतिष्ठित भगवान की पूजा हो रही है वहीं मानव में बसे भगवान की उपेक्षा धर्मकट्टरता के नाम पर साम्प्रदायिक आग्रह तथा एक दूसरे का विरोध शास्त्रों की भाषा तत्कालीन भाषा उसका अपूर्व महत्व, वहीं मानव मन की भाषा समय परिस्थिति का कोई चिंतन नहीं धर्म के अनन्यतम कथित उपासकों का जीवन जहाँ क्रिया-कर्म का पर्याय अवश्य है वहीं जीवन नैतिकता से दूर स्वार्थ की परिधि से घिरा! क्या यही हमारे शान्ति-निर्माता धर्म का मार्ग था?

समाज की मर्यादा एवं अनुशासन के लिए निर्जीव परम्पराओं का आग्रह चाहे वे जीवात्मा को निर्जीव प्रतिमा बना दें। आदर्श के नाम पर यथार्थ से दूर लम्बे-लम्बे वक्तव्य जातीय आग्रह, ववाहिक परम्पराएँ शिक्षा की रूढ़ता, दिखावा अर्थ के आधार पर बड़े-छोटे की भेद रेखा; क्या यही हमारे समाज निर्माण की रेखा थी ?

कहीं मजदूरों का मालिकों द्वारा शोषण तो कहीं मजदूरों द्वारा मालिकों का शोषण हड़तालें काम-रोको तथा तोड़-फोड़ से करोड़ों की सम्पत्ति का ध्वंस निर्माण कम योजनाएँ अधिक कृषक श्रमिक कम क्लर्क, कार्यालय कर्मचारी अधिक कहीं फैशन में अपव्ययता तो कहीं मितव्ययी आदर्श के नाम पर अर्थ का संग्रह, क्या यही वित्त के क्षेत्र में प्रगति एवं स्वावलम्बन का कदम था ?

क्या यही हमारे पुरखों का स्वप्न था ? क्या यही हमारी संस्कृति का आदर्श था ? क्या यही हमारी स्वतन्त्रता का लक्ष्य था ...?

यद्यपि विकास के नाम पर पिछले बीस वर्षों मे कल-कारखानों, इस्पात जल जहाजों विमानों, विद्युत एवं अनेकानेक उद्योगों को प्रतिष्ठित किया गया है अनाज के उत्पादन तथा वितरण के सक्रिय कदम उठाए गए हैं फिर भी विकास अपना गन्तव्य न पा सका है। धनी अधिक धनी, गरीब अधिक गरीब बने हैं। जीवन के अनावश्यक संघर्ष ने धन श्रम, समय का अपव्यय ही किया है। चारित्रिक पतन और सुसंस्कारों के ह्रास की बढ़ती हुई स्थिति देश के लिए चिन्ता का विषय बन गयी है। प्रामाणिकता तथा अनुशासन के अभाव की आंधी-सी आगई है। सर्वत्र अराजकता ने अपना जाल फैला दिया है। क्या भारतीय स्वतन्त्रता का संघर्ष, पुरखों का बलिदान, जनता का त्याग इसी दिन के लिए था ?

आनो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वतः' [ऋगवेद] 'Let noble thoughts come to us from every side. सद्-विचारों के

स्वागत की अनुपम संस्कृति सुप्त हो रही है राम कृष्ण, महावीर, बुद्ध अशोक, विक्रमादित्य, विवेकानन्द दयानन्द सरस्वती राम मोहनराय, देवेन्द्रनाथ रवीन्द्रनाथ रामकृष्ण परमहंस घोष पाल, चटर्जी, टण्डन, द्विवेदी रानाडे, सावरकर भगतसिंह प्रसाद प्रेमचन्द, भारतेन्दु, कर्वे मालवीय विद्यासागर तिलक, गोखले सुब्रह्मण्यम् भारती सुभाष, गांधी पटेल नेहरू राजेन्द्र, शास्त्री ,विश्वेश्वरय्या के आदर्शों का भारत अपने यथार्थपूर्ण आदर्शों से भटक-सा रहा है। सेवा-परक निस्वार्थ मूल्यों का स्थान स्वार्थ ले रहा है। कोई स्थल ऐसा नहीं दीखता जो घिनौने स्वार्थ से अछूता हो। केवल स्व-अर्थ के प्रति मानव जागरूक रह गया है किस प्रकार अपना योगक्षेम साधा जाय किस तरह सत्ता पर अपना अधिकार स्थापित किया जाय, अपनी कुर्सी सुरक्षित रहे किस प्रकार अधिक से अधिक धन उपार्जित किया जाय, जीवन के लक्ष्य बन चुके हैं। काश हमारे इतिहास के वे नायक जीवित होते और देखते कि रामराज्य के स्वप्न की कितनी विकृत विडम्बना आज हो रही है संकीर्ण प्रवृत्तियां देश को जिस बर्बर रूप से ग्रसती जा रही हैं कह नहीं सकते कि ये वृत्तियां देश को किस समस्या के दहलीज पर ले जाकर खड़ा कर देंगी।

विभाजन। जाति और धर्म के नाम पर एक ही राष्ट्र के दो राष्ट्र बना दिए गए और आज भी जाति और भाषा के नाम पर जाति एवं प्रगति के नाम पर शासन व्यवस्था के नाम पर , प्रान्तों का विभाजन हो रहा है। पिछले वर्षों से यह प्रवृत्ति उग्र बन चुकी है। पंजाब एवं आसाम का विभाजन हो गया आन्ध्र में तेलंगाना विभाजन की मांग तथा उसके पीछे हुए भयंकर दृश्य अभी कुछ दिन पूर्व ही हमने देखे और सुने केरल में अलग मुस्लिम जिले की मांग आदर्शों की ओट में होती रही है। देश के नागरिक को बाहरी सीमाओं के विषय में जागरूकता हो या न हो आन्तरिक सीमाओं—मैसूर-महाराष्ट्र, बिहार-

उड़ीसा आन्ध्रप्रदेश-मद्रास पंजाब राजस्थान, महाराष्ट्र-गुजरात, बंगाल-आसाम आदि की चिन्ता विशेष है लगता है वे एक देश के वासी ही नहीं है। एक हा राष्ट्र के नागरिकों के मन की सीमा इन सीमाओं के नाम पर बढ़ती गई है। स्थलसेना के प्रथम कमाण्डर इन चीफ श्रीयुक्त करिअप्पा जी ने बेंगलूर में अपने एक वक्तव्य में कहा था— 'Boundries are to mark maps but not our hearts' सीमा-रेखाए नक्शे को अंकित करने के लिए है, हमारे हृदय को रेखाओं में बांटने के लिए नहीं।

विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता देश-द्रोह एवं विनाश की आग उगल रही हैं। जनतन्त्र में भाग लेने वाली विभिन्न पार्टियाँ अपनी सफलता इसी में मानती है कि सत्ता रूढ़ दल बदनाम हो, इसके लिए उत्तेजनात्मक प्रवृत्तियों में व्यस्त रहना प्रधान कार्य बन गया है। स्थिति यहाँ तक पहुँची है कि देश का भीतरी भाग प्रान्तीय-सेनाओं का गढ़ बनता जा रहा है। लचित सेना शिव सेना भीम सेना आदि प्रान्तीय संगठनों का निर्माण इन्हीं प्रान्तीय भावनाओं को लेकर हो रहा है। और तो और प्रान्तों के नाम पर एक ही राष्ट्र के नागरिकों के मन की दूरी यहाँ तक बढ़ गई है कि दूसरे का अपने प्रान्त में रहना तक पसन्द नहीं किया जा रहा है। क्या यही नव-निर्माण का लक्ष्य था ? क्या यही स्वतन्त्रता की धुरी थी ? इस अराजकता एवं बढ़ती हुई भेदरेखा ने देश के सम्पूर्ण वातावरण को जहरीला बना डाला है। देश का आदर्श नागरिक वेदना के आंसुओं से भीग रहा है किन्तु इस बढ़ती हुई अराजकता की बाढ़ को रोकने में असमर्थ-सा है। जब घर वाले ही घर को आग लगाने चलें तो इसमें किसी का क्या वश ! समय रहते इन तथाकथित नेताओं, देश के रक्षकों आन्दोलनकारियों तथा नागरिकों का ध्यान इधर नहीं किया गया तो देश की अखण्डता खतरे के बिन्दु पर होगी ?

१८ फरवरी १९५३ में लोक-सभा में दिए गए अपने एक वक्तव्य में पण्डित नेहरू ने कहा था— I think that proper integration of India is a major question and I give it the highest priority Compared to it I would *give even the Five* Year Plan second priority By intergation I do not only mean constitutional and legal integration but the integ ration of the minds and hearts of the people of India'

भाषा-जाति एवं प्रान्त के असगाव की प्रवृत्तियां संकुचित विचार धारा का ही परिणाम हैं। भाषा के नाम पर आन्दोलन हड़ताल जुलूस तोड़ फोड़, कोलाहल जन-धन की हानि, एवं अर्थ का दुरुपयोग, निहित स्वार्थ राष्ट्रीय स्वार्थ से टक्कर ले रहा है। कथित शिक्षितों ने भाषा के नाम पर हिंसात्मक आन्दोलनों द्वारा शिक्षा तथा मानवता का मखौल उड़ाया है। जो भाषाएं भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की गौरव शालिनी रही हैं वे ही आज गलत हाथों में पहुंचकर निर्माण के स्थान पर विध्वंस, निकटता के स्थान पर पृथकता प्रेम एवं सौहार्द के स्थान पर द्वेष व घृणा की हेतु बन गई है। हमने भाषा, और भाषी में भेद कर दिया है। निज भाषा में आज हमें पुरानेपन की गन्ध आने लगी है अपने ही देश की भाषा सौत-सी लग रही है। कहने का तात्पर्य है कि विदेशी भाषा का महत्व कम नहीं किन्तु अपनी एवं अपने देश की भाषा के बाद ही उसकी प्राथमिकता हो सकती है।

हिन्दी के नाम पर उठने वाले विवादों ने राष्ट्र के सामने एक जटिल समस्या उत्पन्न कर दी है। उस समस्या का वास्तविक समाधान ही समय की मांग है। हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार करने का कोई पुरातक अथवा प्रान्तीयता का भाव नहीं है और न इसे मात्र उत्तर की भाषा मान कर प्रतिरोध ही किया जा सकता है। अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत के बहुत-से क्षेत्रों में

हिन्दी भाषा का प्रयोग ८० प्रतिशत के लगभग है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी हिन्दी कामचलाऊ भाषा के रूप में व्यवहृत होती है। हिन्दी एक भाषा है, प्रान्तीय भाषाओं के साथ हिन्दी का समतोल करते हुए एक भाषा मात्र न मानकर राष्ट्रीय भावात्मक एकता का सूत्र मानना चाहिए। राष्ट्रीय आत्म-गौरव की प्राञ्जल प्रतिमा माननी चाहिए। राष्ट्रीय भावात्मक तक एकता ही जिसकी आत्मा है राष्ट्रीय आत्म-गौरव ही जिसका जीवन है समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य रस की शक्ति जिसकी नसों में प्रवाहित होती है और भारतीय संस्कृति के स्पदन ही जिसके हृदय की धड़कनें हैं, ऐसी एक भाषा को चाहे वह हिन्दी ही क्यों न हो, राष्ट्र भाषा राष्ट्रीय सम्पर्क-भाषा मानना राष्ट्रीय एकतामूलक शक्तियों का विकास करना ही है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क के लिए किसी विदेशी भाषा का प्रयोग अवश्य किया जा सकता है किन्तु उसे राष्ट्र भाषा मान लेना राष्ट्रीय हित के अनुकूल नहीं कहा जा सकता।

धर्म निरपेक्षता अपने आप में एक विडम्बना है। अल्पसंख्यकों के अस्तित्व को स्वीकृत करते हुए उन्हें सन्तुष्ट रखने के क्षेत्र में बहुसख्यकों के साथ पक्षपात किया गया है। धर्म में नाम पर देश का विभाजन पजाब प्रान्त का वर्गीकरण केरल में अलग मुस्लिम राज्य की स्थापना और आसाम में नागालेण्ड का उदय आदि अनेकों उदाहरण क्या धर्म एवं धार्मिकों का आदश कहा जा सकता है ?

जिस धम को शांति सह-अस्तित्व का पाठ पढ़ाना चाहिए था वही मानव निर्मित संकीर्ण साम्प्रदायिक दीवारों में कैदी बन कर विघटन का कारण बन गया है। अनैतिकता एवं स्वार्थ के प्रति बढ़ते हुए आकर्षण से मानव तथा मानव धर्म का पतन हो रहा है। उपासना की औपचारिकता से हट कर नैतिकता जन-जीवन से पृथक-सी हो गई है। अनावश्यक आवश्यकताओं के चक्रव्यूह में पड़कर मानव हत प्रभ हो

गया है। सादा जीवन उच्च विचार' 'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त यथार्थ से दूर, मात्र आदर्श रह गए हैं।

आधुनिकता एवं दिखावे में स्पर्धा मानवीय मूल्यों की रेखा बन चुका है। मानव विनाश की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच चुका है। देश की राजनैतिक सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति लड़खड़ा रही है। जनता का विश्वास जनप्रतिनिधियों से उठ-सा गया है। सर्वत्र अविश्वास और धूमिल भविष्य का भय छाया हुआ है। फिर धैर्य कहाँ धर्म कहाँ नैतिकता कहाँ ? वह मन्दिरों, मठों मस्जिदों तथा बड़े-बड़े ग्रन्थों में भले सुरक्षित हो किन्तु जन-जीवन के साथ घुल-मिल कर, एकरूपता स्थापित कर जन-जीवन का अंग न बन सके तब तक उसका आदर्श, आदर्श ही हो सकता है यथार्थ नहीं।

समाज में दूसरों के अधिकारों को समानता के स्तर पर आंकने की प्रवृत्ति विमुख होती जा रही है। अनुशासन और कानून की अवहेलना का संक्रामक रोग छाया हुआ है। हिंसात्मक आन्दोलन, तोड़-फोड़ आदि के माध्यम से स्व-पद स्व प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने की चिन्ता करने वाले पदाधिकारियों द्वारा माँगें अवश्य पूरी कराई जा सकती हैं किन्तु इसके सन्दर्भ में छिपी राष्ट्रीयक्षति कम सोचनीय नहीं है। विद्यार्थी आन्दोलनों से जहाँ एक ओर अभिभावकों के अर्थ का दुरुपयोग होता है, वहीं वे स्वयं शिक्षा से वंचित हो कर भावी जीवन में शान्ति खिलवाड़ करते हैं। इसप्रकार की घातक नीतियों दुष्प्रवृत्तियों का शीघ्र ही प्रतिकार किया जाना चाहिए। समय रहते यदि इसका उपचार नहीं किया गया तो जनतंत्र एक अभिशाप बन कर रह जाएगा।

कुर्सियों की माया भारी सम्मान की भूख पदलोलुपता ने जननायक कहे जाने वाले नेताओं का दुर्जन बनाने की ठान ली है। आज देश का राजनैतिक पार्टियाँ जिनका लक्ष्य कभी देश हित रहा आज स्वहित की ओर झुक रही हैं। राष्ट्रीय हित से बढ़कर महत्व दल को दल से बढ़कर

महत्व अपने पद को दिया जा रहा है। राज्यों के विभाजन की मांग के मूल में सत्ता पर अधिकार पाना ही मुख्य है। गत चुनावों के बाद राज नीति में आई हुई अस्थिरता, 'आया राम गया राम दल-बदल' आदि स्वार्थ के प्रमाण बन चुके हैं। राष्ट्र के कर्णधारों जन नायकों की जब ऐसी स्थिति बन चुकी है तो जनता से भला क्या आशा की जा सकती है ? किन्तु यह दोष नेताओं मार्ग-दर्शकों तक ही सीमित नहीं है जनता भी इसमें परिलिप्त है। जनता में जब तक मानवीय गुणों का समावेश नहीं होगा आचरण में नैतिकता नहीं आएगी तब तक समस्यायें उभरती रहेंगी और उसके समाधान की आशाएं निरर्थक ही होंगी। नेता जनता का ही प्रतिबिम्ब है। आज आवश्यकता है बुजुर्गों के पद त्याग की ओर नए खून को प्रोत्साहित करने की।

कानून, धर्म और जाति के नाम पर देश के नागरिकों में बनी असमानता दिलों की दूरी बन कर रह गई है। आचार्य विनोबा भावे के शब्दों में यहाँ जातियाँ भेद बनाने के ख्याल से नहीं हुई एक दूसरे के प्रेम का जरिया ढूंढा गया। वह हो गया है अब उसकी जरूरत नहीं रही है।' अब सब एक साथ रहें जातियों की कोई जरूरत नहीं। जाति धर्म लिंग तथा अर्थ भेद के बिना समानता जहाँ हमारे संविधान का लक्ष्य रहा समान सुविधाएं जहाँ हमारा ध्येय रहा वहीं आज अर्थ के आधार पर ऊंच नीच का भेद एक को प्रधानता और एक को गौण करने की प्रवृति जारी है। अभी तक इसके विरोध में तथा उन्मूलन के लिए कोई साहसिक कदम नहीं उठाया जा सका है। जो कदम उठाए भी गए हैं वे प्रकारान्तर से एक दूसरे प्रकार की भेद रेखा के निर्माणक ही थे। हिन्दू-मुस्लिम कानून की भेद रेखा समानता के अधिकारों पर एक कुठाराघात हो है जिससे साम्प्रदायिकता एवं जातीयता को बढ़ावा ही मिला है। इस कानून की भेद रेखा को समाप्त कर एक सामान्य कानून की रूपरेखा

तैयार कर देश की एकता का और अधिक दृढ़ बनाया जा सकता है। 'अस्पृश्य' एव 'उच्च जाति' शब्दों का प्रयोग अपने आप म एक भेद रेखा है जिसकी अब समाप्ति हो जानी चाहिए। जन-नेता एवं कानून के रक्षकों को इस क्षेत्र म रचनात्मक प्रयोग कर सही अर्थो म न्याय के रक्षक एवं समानता के हिमायती बनना चाहिए।

शिक्षा के क्षेत्र में साक्षरता का विकास तेजी स हो रहा है किन्तु कथित शिक्षित अपनी गौरवपूर्ण संस्कृति, सभ्यता से हटते चले जा रहे हैं। पीछे मुड़कर अपने अतीत को देखना उन्हें गवारा नही और आगे के लिए गन्तव्य का उन्हें पता नही। देश भर में पश्चिमी ढग की शिक्षा का अनुकरण किया गया है। स्वतन्त्रता संग्राम क उन दिनों में भारतीयों ने उस पाश्चात्य पद्धति का बहिष्कार कर काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ बिहार विद्यापीठ, शान्ति निकेतन विश्व भारती अनेकानेक राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की गई थी। आज वही भारतीय पाश्चात्यता क अनन्यतम उपासक ही नहीं संरक्षक भी हैं। शिक्षा तथा शिक्षा-पद्धति का लक्ष्य आजीविका मात्र रह गया है। बड़ी-बड़ी उपाधियां (डिग्रियां) प्राप्त करना ही मुख्य ध्येय बन गया है। विवेक-जागृति का ध्येय लुप्त होता जा रहा है। असहाय और दीनजनों की तरह शिक्षित व्यक्ति भी बेकारी और भुखमरी के शिकार हो रहे हैं। शिक्षित दूसरों पर अधिक निर्भर हैं। लगता है हमारी शिक्षा पद्धति ने स्वावलम्बन का अध्याय ही समाप्त कर दिया है। क्या हमारी शिक्षा व्यक्ति को परिस्थितियों स मुकाबले की शक्ति, दक्षता एव स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाते हुये स्व निर्माण की मंजिल तक नहीं पहुँचा सकती ? क्या वह उसे निजी आवश्यकताओ की आपूर्ति की क्षमता पारिवारिक समस्याओं के समाधान समाज जन सेवा राष्ट्र निर्माण जैसे बुनियादी तथ्यों का अध्ययन नहीं करा सकती ? यदि नहीं तो वह शिक्षा हो ही नहीं सकती। ऐसी शिक्षा म तो देश का भविष्य अन्धकारमय बन

जाएगा। २४ जनवरी १९२२ के एक पत्र में गांधी जी ने लिखा था—

'स्वराज्य आज ही या काफी दिनों तक वर्तमान राज्य से कुछ बेहतर होने वाला नहीं है। हम याद रखना चाहिए कि स्वराज्य होने पर लोग एकदम सुखी होने वाले नहीं हैं। स्वतन्त्र होने के साथ-साथ चुनाव पद्धति में निहित सब दोष अन्याय अमीरों के सत्ता के जुल्म तथा शासन चलाने वालों का अनुभव यह सभी हमारे ऊपर हावी होने वाले हैं। लोगों को ऐसा महसूस होने लगेगा कि यह झमट हमने कहाँ मोल लेली ? लोग अफसोस के साथ बीते हुए समय की याद करेंगे कि उस समय अधिक न्याय था अब से कहीं अधिक अच्छा शासन था शान्ति थी, और अधिकारियों में थोड़े-बहुत प्रमाण में प्रामणिकता भी थी। लाभ केवल एक ही होगा कि एक प्रकार से अपमान और गुलामी का कलंक हमारे मस्तक पर से हट जाएगा।

'सारे देश में शिक्षा का कुछ प्रचार हो तभी कुछ आशा है। उससे लोगों में बचपन से ही शुद्ध आचरण ईश्वर का भय और प्रेम भाव उपजेगा। स्वराज्य सुख देने वाला तभी होगा जब हम शिक्षा के क्षेत्र में सफलता पाएंगे। नहीं तो स्वराज्य' सत्ता के घोर अन्याय व जुल्म से भरा हुआ एक निवास होगा।

एक कथित शिक्षित कागजी ज्ञान अवश्य रखता है किन्तु देश के निर्माण में जो योग उसका होना चाहिए, उससे वह हटता जा रहा है। देश का निर्माण तो दूर रहा वह स्व निर्माण में भी अपने को अक्षम मान रहा है। देश के निर्माण की चिन्ता न सही यदि वे स्व-निर्माण के सही मार्ग को भी प्रशस्त करते तो निःसंदेह स्व निर्माण के साथ राष्ट्र निर्माण स्वतः सध जाता। शिक्षा पद्धति को स्व-हित राष्ट्र-हित के अनुकूल बनना चाहिए, ताकि युवक स्व-निर्माण भी कर सकें एव राष्ट्रीयता से विमुख भी न बने

सामाजिक स्तर पर अभी भी अनेक कुरीतियां एवं परम्पराएं भारतीय समाज के जीवन का अंग बनी हुई हैं। जातीय एवं साम्प्रदायिक संकीर्णताओं ने मानव के ज्ञान चक्षुओं को बन्द कर रखा है। परिणाम स्वरूप असमानता समाज का कुष्ठ बन चुका है। अभिभावकों एवं बच्चों शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों के बीच सामंजस्य नहीं है। अस्तु, नवीन पीढ़ी के युवक जहां प्रगति के पक्षपाती हैं वहीं वृद्ध समाज चली आ रही रूढ़-परम्पराओं के पोषक। इस आपसी संघर्ष और खींचातानी ने दोनों को दिग्भ्रांत कर दिया है, फलतः अतिवाद जोर पकड़ रहा है। मानव के मूल्यांकन का माध्यम आजकल पैसा बना हुआ है। जीवन के साथी का चयन आज भी बिना चाव के निर्णीत होता है। परिणाम स्वरूप बेमेल विवाह जीवन के लिए अभिशाप बन चुका है। इस तरह से पीड़ित-युगल जीवन से निराश होकर पलायनवाद की ओर झुक रहे हैं। आधुनिकता एवं फैशन के झुकाव में अतिव्यय एवं अपव्यय प्रेस्टिज एवं इज्जत का विषय बन चुका है। सर्वत्र जो होना चाहिए वह नहीं हो रहा है एवं जो न होना चाहिए वह हो रहा है। आज इन सभी क्षेत्रों में नई दिशा नई स्फूर्ति की अपेक्षा है।

श्रमिक मालिकों का शोषण कर रहे हैं और मालिक श्रमिकों का। इस विवाद से उत्पन्न तोड़-फोड़ मूलक कदम राष्ट्रीय सम्पत्ति और प्रतिष्ठा को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। मंहगाई अपनी रेखा लांघ चुकी है। बेरोजगारी, बढ़ती हुई जनसंख्या, गरीबी और भुखमरी से देश के रीढ़ की हड्डी टूट चुकी है। आवश्यक प्रगति का मोड़ लेकर विपरीत दिशा को अनावश्यक प्रगति, राष्ट्र के लिए चिन्तनीय है। अतिवृष्टि अनावृष्टि देश के साथ खिलवाड़ कर रही है। इस पर निर्भर देश उतार चढ़ाव के तूफान से गुजर रहा है। जिस धरती पर घी-दूध की नदियां बहती थी वहां का कृषक हजारों लाखों को रोटी देने वाला था आज स्वयं भूखे पेट सोता है। गौवों को गर्मी सर्दी वर्षा से बचाने वाले

भवन निर्माता स्वयं झुग्गी झोपड़ियों में अपना जीवन काटते हैं। लाखों करोड़ों को वस्त्र देने वाले शरीर का कभी मिलों कल-कारखानों एवं करघों पर थकते नहीं स्वयं फटे-पुराने चिथड़ों में लिपटे रहते हैं। लाखों-करोड़ों का काम देकर सुख की नींद सुलाने वाला स्वयं कठिनाई से सो रहा है न अट्टालिकाओं में रहने वाला सुखी है और न कुटियों में रहने वाला ही। सर्वत्र किसी न किसी तरह का अभाव है।

देश की कृषि एवं सिंचाई सम्बन्धी योजनाओं को काफी तेजी से मूर्त रूप देना है ताकि अभाव नाम की कोई वस्तु यहाँ न रहे। श्रम एवं बुद्धि के योग से कर्म की ओर निरन्तर बढ़ते रहें तो मंजिल स्वयं स्वागत करेगी देश स्वनिर्भर बन जायगा। आज जो अपने विकास कार्यों को गतिमान रखने के लिए हमें विदेशों की ओर ताकना पड़ता है *यदि समय श्रम तथा अर्थ का दुरुपयोग न कर उसे सही ढंग से व्यवहृत* करना प्रारम्भ कर दिया जाय तो निश्चित ही देश प्रगति के मार्ग को प्रशस्त करता हुआ अपना लक्ष्य अपनी मंजिल, अपना ध्येय-बिन्दु पा लेगा।

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने १९५० में स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर आकाशवाणी से राष्ट्र के नाम सदेश देते हुए कहा था—

The world is today on the brink of an abyss and a single false step may send it head long into the bottomless pit of destruction I therefore hope that our common people, our workers and administrators, our thinkers and writers will all rise to the occasion and, discarding all selfish considerations throw themselves into the noble task of building a new and better India. Capital trade, labour the services and professions, all have their contribution to make and their burdens to bear and

let me hope that they will fulfill their obligations We are heirs to a great past and the archi ects of a better and brave future By the grace of God and through the active co-operation of all sections of our people, we shall overcome the difficulties that straddle our path and march forward to the glorious temple of peace Prosperity and Progress

आज हर विषय पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार एवं निणय की आवश्यकता है। प्राचीन तथा नवीन पाश्चात्य और पौर्वात्य विचार धाराओं मे समन्वय की अपेक्षा है। समाज को दोनों के बीच का एक रास्ता निकालना ही होगा अपनी संस्कृति की सुरक्षा व विकास के लिए आज हमें मूल्यांकन करना है अपने आपका। हम कहाँ जा रहे थे क्या थे ? कहा हैं, क्या हैं ? कहाँ जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं ? और क्या और कहा होना चाहिए ? यही कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो जन-मानस को यदा-कदा आन्दोलित करते रहते हैं। अपेक्षा है इनके समाधान की।

डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने १ नवम्बर १९५६ को सूचना प्रसारण मंत्रालय द्वारा आयोजित पुस्तक प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए कहा था—

'From the happaning in the world we should learn a lession." आगे उन्होंने कहा— " We are living in a world where inner strength is essential While we should strengthen the constructive forces the disruptive trends which caused our downfall and subjection require to be resisted There is so much that is dead to which we are still clinging We must discard thet dead and moralize our syclety "

हम अणु युग म भी रहे हैं। यह ऐसा युग है जिसमे एक ओर मानव विनाश के कगार पर खड़ा है तो दूसरी ओर चाद के रहस्यों का उद्घाटन कर रहा है। इसी वातावरण के बीच हमें विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ उठना बैठना है। प्रश्न यही नहीं है कि हम क्या चाहते हैं ? प्रश्न यह भी है कि हमको इसी वातावरण में रहना है, जाना है और यदि स्थितिया अनुकूल नहीं है, तो बनाना है। बाल गंगाधर तिलक ने कहा था—'स्वराज्य प्रगति की नींव अवश्य है, किन्तु अन्तिम लक्ष्य नहीं हमें नए राष्ट्र का निर्माण करना है, नए चरित्र का विकास, अपने सिद्धान्तों के अनुकूल जीवन आध्यात्मिक मान्यताओ म विश्वास, देश के लिए प्रेम एवं विरोधी विचारो के प्रति भी समभाव की अपेक्षा है।' हमने अपने विगत से बहुत कुछ पाया है, उन अनुभूतियो के आधार पर सुदृढ़ नवीन का निर्माण करना है।

आज हमारी दिग्भ्रान्त मानवता को अपना लक्ष्य निर्धारित करने के लिए मंजिल तक की पहुँच के लिए, आचरण करने वालों की आवश्यकता है, विरासत मे प्राप्त विचारों का अन्धानुकरण करने वालों की नहीं उनमें राष्ट्रानुकूल परिवर्तन करने का साहस रखने वालों की आवश्यकता है। परिणाम की प्रतीक्षा किए बिना, कार्य एवं साधनों की उपयुक्तता के विचारों के साथ कार्य-निष्ठा की अपेक्षा है। गीता के द्वितीय अध्याय का ४७ वां पद्य इन्हीं विचारों की प्रेरणा देता है—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥'

आज राष्ट्र चाहे जैसा भी है-अपना है। इसे सजाने, सवारने संवारने गढ़ने की अपेक्षा है। देश को देश के नागरिकों की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परम्परायुक्त मान्यताओं को नया निर्माण नवीन चेतना नव जाग्रति अभिनव जिंदगी नई दिशाए देना है यही आज की आवश्यकता एवं सच्चे अर्थों में राष्ट्रीयता है।●

राष्ट्र निर्माण की बुनियाद धर्म !

अभी-अभी ६ जुलाई के पत्र में हार्डलिया फैक्टरी के उस प्रशासनिक भवन में आग लगाने का समाचार थे जिसमें लगभग १०० अधिकारी अपना कार्य कर रहे थे। यह एक प्रयास था, आदमी या 'मानव' का 'मानव' को जिन्दा जला देने का। पिछले वर्ष इसी प्रकार की एक घटना तमिलनाडु (मद्रास) प्रान्त के एक गांव में घटित हुई थी, *हरिजन एवं दलित वर्ग कहे जाने वाले लोगों की पूरी बस्ती को* भस्मसात् कर देने की। किया गया निरीह बच्चों और अबलाओं के साथ मानव का बर्बरतापूर्ण व्यवहार। एक क्या अनेकों समाचार आए दिन पढ़ने और सुनने को मिलते हैं।

तरुण हृदय कवि के 'सुन आकाश' का यह पद्य सत्य के कितना निकट लगता है—

> 'आदमी अब जानवर की, सरल परिभाषा बना है
> भस्म करने विश्व को यह आज दुर्वासा बना है।
> क्या जरूरत राक्षसों की चूसने इन्सान को अब—
> आदमी ही आदमी के खून का प्यासा बना है'

यह घटनाएं मानव की दुर्बलता की द्योतक हैं मानवता के पतन एवं धर्म के जन-जीवन में अभाव की सूचक हैं। मानवता के अभाव एवं पतन की इन घटनाओं से आज का सारा वातावरण दूषित हो गया है। पतन एवं अभाव में स्वच्छन्द स्वार्थ राष्ट्रीय हितों से टकरा रहे हैं। यत्र-तत्र जन धन की अपार क्षति हो रही है। मानव जीवन

त-व्यस्त हो चुका है। आधुनिक शिक्षा एवं सभ्यता के परिवेष में सु दर लगने वाला इन्सान अन्दर से खोखला हो चुका है। आदर्श एवं धर्म के सिद्धान्त-मात्र सिद्धान्त रह गए हैं। साधक एवं ऋषि परम्परा का देश जिस विपरीत दिशा की ओर तेजी से बढ़ रहा है—यह एक चिन्तनीय विषय है। कहीं वह खो गया है, धर्म के नाम पर पोषित संकीर्ण साम्प्रदायिक दीवारों में एवं कहीं साम्प्रदायिकता के विद्रोह में उसका जीवन धर्म से परे अनैतिक बन कर रह गया है। कहीं धर्म ही धर्म से उलझ गया है। एक कवि की दृष्टि में उसके धर्म की परिभाषा इस प्रकार है—

'युग युग से होती आई है नई धर्म की परिभाषा,
उसकी जिसमें बहु जाती है अन्तरतम की अभिलाषा।"

जिन सिद्धान्तों की प्ररूपणा स्थापना जन-हित जन शान्ति जन ऐक्यता जन विकास के लिए की गई थी, जिनकी लोक कल्याण ही एक मात्र आत्मा थी और जिस देश को इसके प्रचार प्रसार का गौरव था। वही आज वैमनस्य एवं संघर्ष और धर्म विषमता का कारण बन कर जन-जीवन से हट जाए इससे बढ़कर दुर्भाग्य की बात क्या हो सकती है? Love thy neighbours as you love thy self अपने पड़ौसी को उसी तरह प्यार करो जैसे तुम अपने आप को करते हो आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् मानवता एव धर्म का यह आदर्श कहाँ विलीन हो गया ?

धारणाद्धर्ममित्याहु: धर्मो धारयते प्रजा:
यस्याद्धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चय.—गीता

धर्म शब्द संस्कृत की 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'धारण करना'। जिससे जनता जनादन की रक्षा हो पालन हो वही धर्म है।

धर्म के हेतु की व्याख्या मनुस्मृति में इस प्रकार की गई है—

'धृति क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रह

धैर्य, क्षमा, दमन, अचौर्य, इन्द्रियनिग्रह आदि ही धर्म के हेतु हैं। मानव का मानव ही बने रहना धर्म है। मानवता ही धर्म का आधार है। किन्तु आज सीमित दायरों में हम सब आँखें मूंदे साम्प्रदायिक विचारों का अनुकरण कर रहे हैं। जाति एवं धर्म-सम्प्रदाय मात्र विरासत से प्राप्त निधि रह गई हैं। आज धर्म के सही अर्थ को जानने, समझने, तर्क पूर्ण उसे पहचानने एवं उसकी गहराई में जाने के लिए मनुष्य के पास समय नहीं है, पर समय निकल आता है दूसरों की मान्यताओं की अवहेलना करने का खण्डित करने का। यह एक दूसरे का विरोध देश की संगठनात्मक शक्तियों के लिए बड़ा ही विघटक रहा है।

हिन्दू धर्म अहिंसा और सत्य के अस्तित्व में विश्वास करता है। मुस्लिम इस्लाम अर्थात् एक ही ईश्वर और ईमान को प्रधानता देता है। ईसाई—मनुष्य की समानता और तर्क को औचित्य की कसौटी मानता है। पारसी—जल प्रकाश और वायु को ईश्वर का रूप एवं जीवन का स्वरूप कहता है। यहूदी—ईश्वर की सृष्टि निज-अहंकार का त्याग बौद्ध-करुणा एवं सेवा जैन-त्याग एवं तपस्या को ही धर्म मानते हैं। सूक्ष्म-दृष्टि से सभी धर्मों पर विचार किया जाये तो सबमें मानव धर्म का ही विवेचन है। अन्तर केवल इतना है कि समय एवं देश काल अवसर के अनुसार प्रकारान्तर से सब ने एक बात को प्रतिपादित किया है। यही प्रकारान्तर आगे चलकर रूढ़ बन गया और खण्डन-मण्डन की प्रक्रिया जागृत हो उठी। इतना ही नहीं वह अपनी परिधि का उल्लंघन कर व्यग्र अवहेलना का रूप ले चुका है। बढ़ते हुए क्लेश विद्रोह एवं संघर्ष आदि सामूहिक विषमता का कारण बन गए हैं। एक वर्ग दूसरे को हीन समझने लगा है। बीमारी बढ़ती गई विचार एवं विवेक शक्ति से कुंठित होकर संकीर्णता का पोषण किया है। देश की प्रगति एवं व्यक्ति स्वातन्त्र्य पर कुठाराघात हुआ

है। सम्प्रदाय बुद्धिजीवियों एवं परम्परा-पोषकों के बीच संघर्ष का कारण रहा है। परम्परा पोषकों ने जहाँ क्रिया-कर्म को महत्त्व देते हुए अपने आप को धर्म का हिमायती कहा है एवं नवीन पीढ़ी के नए विचारकों को धर्म के लिए खतरा बताया है, वहीं संकीर्णता से ऊपर उठने की गति में इस कथित बुद्धजीवियों का धर्म पर से विश्वास ही उठ गया है और इस बहाव में वे अति आधुनिकता एवं पाश्चात्यता की ओर झुक गए हैं। दोनों की गलत धारणाओं एवं विवाद से देश को काफी क्षति पहुँच रही है। अक्टूबर १९५० में आयोजित अखिल भारतीय नैतिक सम्मेलन के अवसर पर भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था—

'I feel that we should rather build upon our old foundations than go alone an altogether new path which may be quite good for other countries

भारतीय संस्कृति एवं धर्म का आदर्श—'आत्मवत् सर्वभूतेषु अहिंसा परमोधर्म' । 'वयविस्सव ग्रम-बाबुबम्या' रहे हैं। अहिंसा दया सत्य सेवा तथा सबके साथ समानता की भावना धर्म की नींव के पत्थर रहे हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' विश्व-मैत्री ही हमारा नारा रहा है। मूल में सब परिमापाए मान्यताए धारणाए एक ही आधार शिला पर आधारित हैं। एक समय था भारत को वह सम्मान प्राप्त था। भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है। यहाँ सभी धर्मों का समान रूप से आदर किया जाता रहा है। हमारा साहित्य हमारे धर्मा ध्याय हमारे रस्मो-रिवाज हमारी संस्कृति एव सभ्यता इस बात का प्रमाण है कि किस तरह सर्व-धर्म समभाव यहाँ पलते और पनपते रहे हैं। भगवान बुद्ध और महावीर राम और कृष्ण वाल्मीकि तुलसी सूर कबीर एवं उनके पश्चात् शंकराचार्य माधवाचार्य रामकृष्ण परमहंस स्वामी रामतीर्थ विवेकानन्द दयानन्द सरस्वती, राज्याधि-

पति अशोक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अकबर आदि न सब धर्मों के सम्मान की बात कही है। विदेशी धर्मों का देशीय धर्मों के साथ एकसाथ हो जाना धर्म निरपेक्षता का ही कारण है। सच है तो महत्व इस बात का कि विदेशी हुकूमत न जिसका लक्ष्य फूट डालो और राज्य करो' रहा, जाति एवं धर्म की भेद परक खाइयों का सुदृढ़ बनाकर अपना उल्लू सीधा किया। वही समाज वही मानव जो धर्म के नाम पर गले मिलते थे एक दूसरे का आदर करते थे, सत्कार करते थे घृणा करने लगे। अपनी धर्म-मान्यता के प्रचार प्रसार में वे दूसरों से अपने को श्रेष्ठ दिखाने का प्रयास करने लगे। हिन्दू संस्कृति म आज भी वर्ण भेद म ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र के अलग-अलग धार्मिक-त्योहारों उत्सवों को सभी धर्म के लोग इस प्रकार मिल कर मनाते हैं कि उन त्योहारों की पृथक्ता का भान भी नहीं होता। प्रारम्भ म श्रावणी पूर्णिमा (रक्षा बन्धन) मात्र ब्राह्मणों का त्योहार था, इसी प्रकार दशहरा क्षत्रियों का था दीवाली वैश्यों की थी एवं होली शूद्रों का त्योहार था। किन्तु ये सभी त्योहार आज एक रस होकर मनाए जाते हैं, यहां के निवासियों की एकता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है। भारतीय संस्कृति से प्राप्त स्वाभिमान ही जिस धर्मों की आत्मा थी वे क्यों मौन रहते। स्व रक्षा म उन्होंने भी अपना बल लगाया। परिणाम हुआ संघर्ष। दूरियां बढ़ती गई। हिन्दू-मुस्लिम विभेद रेखा इन्हीं विरोधी शक्तियों का दुष्परिणाम है। देश का धर्म और जाति के नाम पर विभाजन बहुत बड़े संघर्ष का कारण बना। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व एवं पश्चात् यह चिनगारी आग बन गई। देश में धर्म के नाम पर हत्या लूट रक्तपात आदि अमानुषिक कार्यों की बाढ़ सी आ गई। सन् १९४७ म देश के विभाजन के अवसर पर पंजाब म हुए हिन्दू मुस्लिम संघर्ष म लाखों लोगों का खून आज भी धर्म के नाम पर लगे दाग धब्बों को साफ नहीं कर सका। पंजाब ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत इस संघर्ष से अछूता न रहा। यह खून आज भी इस प्रकार जड़ जमाए

बैठा है कि 'फूट डालो और सत्ता का हथियाओ' की नीति भीतर-ही भीतर पनप रही है। सत्ता के लिए धर्म और आदम का चोगा पहन कर देश के राज्यों के विभाजन की मांगें सिर उठा रही हैं। जनता सिहर उठी है। एक प्रान्त की जनता का दूसरे प्रान्त की जनता से विश्वास उठता सा जा रहा है। यह विघटनकारी नीतियाँ देश को कहाँ ले जाएगी कहा नहीं जा सकता ?

आज जो धर्म बदनाम है, उसमें निहित है—धर्म का नाम आगे रखकर सम्प्रदाय-पोषण में हुए रक्त पात शोषण और अन्याय ! धर्म सर्व हित चाहता है, युद्ध नहीं किन्तु विचार प्रसार के इस गलत कदम ने, भूल ने धर्म को बदनाम किया है। जनता अपने अगुआ मार्ग-दर्शक, धर्माचार्यों में सदा से विश्वास करती आई है। किन्तु आज वे ही मार्ग दर्शक धर्माचार्य एवं जन-नेता संकीर्ण साम्प्रदायिकता के प्रचार प्रसार में अधिक रुचि लेने लगे हैं अपेक्षाकृत धर्म के। साम्प्रदायिकता को भड़काने वाले वे कथित नेता सबक इस बात को क्यों भूल जाते हैं कि देश का कोई भी नागरिक किसी भी धर्म मान्यता का क्यों न हो उसका प्रथम एवं मुख्य धर्म है राष्ट्र भक्ति। फिर एक दूसरे पर कीचड़ उछाल कर राष्ट्रीय शक्तियों का अपव्यय करना ओछापन नहीं तो और क्या है ? नेहरू जी ने कहा था— आदमी धर्म के लिए झगड़ेगा उसके लिए लिखेगा उसके लिए मरेगा सब कुछ करेगा पर उसके लिए जिएगा नहीं। बर्टेन लिखते हैं—'प्रत्येक धर्म उतना ही सत्य है, जितना कि दूसरे धर्म। महात्मा गांधी ने कहा था—'सब धर्म निश्चित रूप से समान हैं। क्योंकि सबका आधार एक ही तत्व 'सत्य' है। रास्ते भिन्न अवश्य हो सकते हैं, किन्तु मंजिल तो एक ही है। आगे वे कहते हैं—'गीता' कुरान बाइबिल एक ही सत्य वचन के भिन्न भिन्न माध्यम हो सकते हैं।'

भू० पू० राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने १२ अगस्त १९५४ को अपने भूपिकस में दिए गए भाषण में कहा था—

है। इस तरह के दुखी दम्पति विधवाएं आदि का जीवन सर्वथा घुटनपूर्ण हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? वे दम्पति जो राष्ट्र-देश के लिए बहुत कुछ करने में समर्थ हो सकते हैं परिस्थितियों के चंगुल में पड़कर अकर्मण्य बन जाते हैं। धर्म के नाम पर बनी यह मान्यताएं मान्यताएँ ही हैं, इन्हें धर्म का चोगा क्यों पहनाया जाय ? धर्म के नाम पर यह अमानुषिक व्यवहार मानवता के साथ एक खुला विद्रोह है। धर्म यदि जनता के सुख-शांति एवं राष्ट्र की प्रगति में बाधक बन कर उपस्थित हो, उसे धर्म की संज्ञा देना कहाँ तक उचित है कहा नहीं जा सकता ?

जीवन से हताश होकर पलायनवाद की ओर झुकना, आत्म-हत्या के लिये विवश हो जाना किसी भी स्थिति में धर्म का विषय नहीं हो सकता ? आज गो हत्या के विषय में नारे लगाये जाते हैं, आन्दोलन किया जाता है। गौ रक्षा के प्रश्न को लेकर बोलना हिन्दुत्व का पर्याय बन गया है। अहिंसा जिसे प्रायः सभी धर्मों में प्रकारान्तर से श्रेष्ठ माना गया था के लिहाज से किसी भी प्राणी का वध करना अपराध है चाहे वह गाय हो या बकरी। भारतवर्ष तो सदा से ही शाकाहार का हिमायती रहा है। परन्तु आश्चर्य तो तब होता है कि धर्म, सत्ता अधिकार के नशे में मानव का मानव के साथ क्रूर व्यवहार पशु से भी बदतर होता जाए और उन्हें समाज की पंक्तियों में बलपूर्वक पीस दिया जाए। यह कहाँ की अहिंसा है ? देश के साहित्यकारों कवियों का ध्यान सदा से ही अमानुषिक कार्यों की भर्त्सना करना रहा है। मुगल सम्राट अकबर के दरबार में गाय की फरियाद कवि के मानसिक आघात का ज्वलन्त प्रमाण है—

"जारी रहा यह क्रम अगर, यों ही हमारे नाश का
तो अस्त समझो सूर्य भारत-भाग्य के आकाश का।

जो तनिक हरियाली रही, वह भी न रहने पाएगी
यह स्वर्ग भारत भूमि बस मरघट मही बन जाएगी।"

—भारत-भारती

आज हिंसा विरोधी नाना प्रकार की थोथी दलीलें अवश्य पेश करते हैं किन्तु मूल में जाकर उसकी व्यापकता पर चोट करना उनके लिए सम्भव नहीं लगता। शोषण की श्रेणी में ब्याज, रिश्वत, अधिक श्रम ब्लैक मारकीट [काला बाजार] मिलावट आदि क्या अहिंसा की कोटि में आते हैं ? जबकि भारतीय दर्शन सूक्ष्म से सूक्ष्म अहिंसा का विश्लेषण करता आया है। एक बंगला पद्य के अनुवाद में अहिंसा की सूक्ष्मता का परिचय प्राप्त कीजिए—

कंकड़ी मारो नहीं, पत्तियाँ फेंको नहीं,
क्योंकि
सलिल को लहर बनाने में भी क्लेश होता है।

वास्तविकता तो यह है कि प्राणी-मात्र को दिया गया कष्ट चाहे वह जिस प्रकार का भी हो अहिंसा की अवहेलना ही मानी जाएगी। दिनकर जी का यह पद्य शायद इस स्थिति को अधिक स्पष्ट कर सके—

'श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र
भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर,
जाड़े की रात बिताते हैं।
युवती के लज्जा वसन बेच,
जब ब्याज चुकाए जाते हैं।
मालिक तब तेल फुलेलों पर,
पानी-सा द्रव्य बहाते हैं।"

मनुष्य का शाकाहारी बनना नितान्त आवश्यक है। गायों की हिंसा सर्व काल में अधर्म का विषय रहा है। गौरक्षा भी समयानुकूल आवश्यक है, मात्र नारेबाजी तक वह सीमित न रह, कुछ उस पर किया जाए। देश की आर्थिकस्थिति, बच्चों के स्वास्थ्य के लिए भी गौरक्षा होनी चाहिए। और देकर कहना होगा कि गौरक्षा में विश्वास करने वाले कितनेक व्यक्ति के पास गायें हैं? और क्या उनकी देखभाल नि स्वार्थ भावना से भी की जाती है? कहने का तात्पर्य उन कृषिकारों से है जिनका जीवन पशु-पालन में व्यतीत होता है। और जो कई गायों का पालन भली प्रकार कर सकते हैं। अनुभव से यह विदित हुआ है कि दुधारू गायों को छोड़कर अन्य गायों का पालन प्राय नहीं के बराबर ही है। पिछले वर्ष राजस्थान प्रान्त में सूखे के कारण जो पशुओं का ह्रास हुआ वह इस तथ्य को प्रकट करता है कि हमारी दृष्टि में समय का महत्व है प्राणी का नहीं। देश का प्रान्तीयता के स्तर पर काफी विभाजन है। एक प्रान्त कठिनाइयों से गुजर रहा हो दूसरा उसकी अवहेलना करे यह राष्ट्र के गौरव के सर्वथा विपरीत है। अब प्रश्न उठता है जिन पशुओं का पालन नहीं हो पाता वे पशु कहाँ जाते हैं? कुछ गौशालाओं ने इनके पालन का भार [केवल गौए और उनसे उत्पन्न बछड़े] अपने ऊपर ले रखा है जिन्हें उनकी व्यवस्था के लिए धनी-मानी लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। इससे कुछ पशुओं को राहत अवश्य मिलती है परन्तु, समाधान नहीं। पूना में जैन-समाज द्वारा चलायी जाने वाली संस्था जीवदया मण्डल' अहिंसा की दृष्टि से काफी कार्य संलग्न है। इस प्रकार मथुरा [वृन्दावन] अयोध्या, वाराणसी आदि धार्मिक स्थलों पर कुछ गौशालाएं काफी महत्व पूर्ण हैं। आवश्यकता है इस दिशा में अधिक सक्रिय होने की।

कोई कोई लोग युद्ध को आवश्यक और दीर्घ-स्थायी मान तथा उसके लिए सामग्री का संचय करते रहते हैं। अपनी अत्याचारी

मनोवृत्ति को फलीभूत करने के लिए वे युद्ध की भूमिका येन-केन प्रकारेण तय्यार ही कर लेते हैं। उस विचित्र बुद्धि पर तरस आता है कि बिना रक्तपात तथा युद्ध हुए समाज और जाति का पतन हो जाता है और वह समाज पुरुषत्वहीन हो जाता है। सन् १९४१ में विशाल भारत नामक समाचार पत्र में एक स्थान पर लिखा है—जर्मन विद्वान् नीत्से युद्ध के प्रबल पोषक और प्रेरक रहे हैं। युद्ध की प्रेरणा करते हुए कहते हैं— संकटमय जीवन व्यतीत करो। अपने नगर को विसूवियस ज्वालामुखी पर्वत की बगल में बनाओ। युद्ध की तैयारियाँ करो। मैं चाहता हूँ कि तुम लोग उसके समान बनो जो शत्रु की खोज में रहते हैं। मैं तुम्हें युद्ध की मन्त्रणा देता हूँ, मेरी मंत्रणा शान्ति की नहीं, विजय लाभ की है। तुम्हारा काम युद्ध करना हो तुम्हारा शान्ति विजय हो। अच्छा युद्ध प्रत्येक उद्देश्य को उचित बना देता है। युद्ध की वीरता ने दया की अपेक्षा बड़े परिणाम पैदा किए हैं। तुम्हारी दया ने नहीं वीरता ने अब तक अभागे लोगों की रक्षा की है। तुम पूछते हो 'नेकी' क्या है ? वीर होना नेकी' है। आज्ञापालन और युद्ध का जीवन व्यतीत करो। खाली लम्बी जिन्दगी से क्या फायदा ? जो देश दुर्बल और घृणास्पद बन गए हैं, वे यदि जीवित रहना चाहते हैं तो उन्हें युद्ध रुप औषध ग्रहण करनी चाहिए। मनुष्य को युद्ध के लिए शिक्षा दी जानी चाहिए। इसके सिवाय अन्य बातें बे-समझी की है।'

मानव संहार की इस विनाशकारी पक्ष की सार-शून्यता दो विश्व युद्धों के अनुभवों ने स्वयं प्रकट कर दी है। हार्वर्ड युनिवर्सिटी के तत्वज्ञानी प्रो० डाक्टर जार्ज ने लिखा है— युद्ध राष्ट्र की सम्पत्ति का नाश करता है उद्योगों को बन्द करता है राष्ट्र के तरुणों को स्वाहा कर देता है सहानुभूति का संकीर्ण बनाता है और साहसी सैनिक वृत्ति वालों द्वारा शासित होने के दुर्भाग्य को प्राप्त कराता है। यह

भावी पीढ़ी की उत्पत्ति का भार दुबल, बदसूरत, पौरुषहीन व्यक्तियों पर थोपता है। युद्ध को साहस और सद्गुण की भूमि स्वीकार करना ऐसा ही है जैसे व्यभिचार को प्रेम की भूमिका कहना।"

इसी सन्दर्भ में टाल्स्टाय का कथन कितना महत्वपूर्ण है—"युद्ध का ध्येय प्राणघात है उसके अस्त्र हैं—जासूसी छल को प्रेरणा, अधिवासियों का विनाश उनकी सम्पत्ति का अपहरण करना अथवा सेना की रसद चोरी करना दगा और झूठ जिसे 'सैनिक उस्तादी' कहते हैं। सैनिक व्यवसाय की आदतों में स्वतन्त्रता का अभाव रहता है। उसे अनुशासन आलस्य अज्ञानता क्रूरता, व्यभिचार तथा शराबखोरी कहते हैं।'

युद्ध के परिणामों से प्रेरित हो ड्यूक आफ वेलिंगटन ने लिखा है— 'मेरी बात मानिए अगर तुम युद्ध को एक दिन देख लो तो तुम सर्वशक्तिशाली परमात्मा से प्रार्थना करोगे कि भविष्य में मुझे एक घंटे के लिए भी युद्ध न देखना पड़े।'

युद्ध की विभीषिकाओं और भयंकर नरसंहार से सम्राट अशोक को इतनी गहरी मानसिक वेदना हुई कि उसने यावज्जीवन युद्ध न करने की घोषणा कर दी। अहिंसा धर्म के साथ-साथ राज्य व्यवस्था का भी अंग बन गई है। आगे चलकर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में अहिंसक क्रान्ति को जिस पद पर आसीन किया गया वह युग-युग तक के लिए अमर हो चुका है। विशेष कर महात्मा गांधी के अहिंसात्मक प्रयोग ने विश्व को चौंका दिया और साथ ही यह सिद्ध कर दिया कि अहिंसा का मार्ग कमजोर व कायरों का नहीं अपितु आत्म-गौरव शक्ति सम्पन्नों का मार्ग है मानवता का मार्ग है।

एक राष्ट्र युद्ध छेड़कर दूसरे राष्ट्र को उत्पीड़ित करे और दूसरा राष्ट्र भी उस उत्पीड़न का प्रत्युत्तर युद्ध के रूप में दे तो परिणाम निकलता है—हजारों लाखों, करोड़ों व्यक्तियों का खून। कभी-कभी

एकपक्षीय आक्रमण से ही भयंकर विनाश हो जाता है। हिरोशिमा और नागासाकी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। छोटे-छोटे विवादों में उलझना अथवा युद्ध की विभीषिका पैदा करना मानवता के सर्वथा प्रतिकूल है। मानव-धर्म के साथ खुला विद्रोह है। आवश्यकता है समस्त विश्व का मैत्री के सूत्र में आबद्ध होने एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ सहिष्णु होने की। जहाँ मानवता का प्रश्न उठता है वहाँ देश, जाति सम्प्रदाय आदि की संकीर्ण परिधियों से उन्मुक्त होकर विश्व-राष्ट्र के निर्माण की परियोजना हो ऐसी आवश्यकता है और यह तभी सम्भव होगा जबकि हम मानवी शक्तियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर उसका सही प्रयोग करेंगे।

अमर भारती फरवरी १९६९ के अंक में 'क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है' शीर्षक से उपाध्याय श्री अमर मुनि जी के यह विचार धर्म और विज्ञान पर गहरा प्रकाश डालते हैं—

अध्यात्म और विज्ञान दोनों ही मानव जीवन के मुख्य प्रश्न हैं, और बहुत गहरे हैं। जीवन के साथ दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी आज दोनों को भिन्न भूमिकाओं पर खड़ा कर दिया गया है। अध्यात्म को आज कुछ विशेष क्रियाकाण्डों एवं तथाकथित बासू मान्यताओं के साथ जोड़ दिया गया है और विज्ञान को सिर्फ भौतिक अनुसंधान एवं जगत् के बहिरंग विश्लेषण तक सीमित कर दिया गया है। दोनों ही क्षेत्रों में आज एक वैचारिक प्रतिबद्धता आ गई है, इसलिए एक विरोधाभास-सा खड़ा हो गया है। और इस कारण कहीं-कहीं दोनों को परस्पर प्रतिद्वन्द्वी और विरोधी भी समझा जा रहा है। आज के तथाकथित धार्मिक-जन विज्ञान को सर्वथा झूठा और गलत बता रहे हैं और विज्ञान बड़ी बेरहमी के साथ धार्मिकों की तथाकथित अनेक मान्यताओं को झकझोर रहा है।"

'मैं सोचता हूँ, धार्मिक के मन में जो यह अकुलाहट पैदा हो रही है, धर्म के प्रतिनिधि तथा कथित शास्त्रों के प्रति उनके मन में अनास्था

एवं विचिकित्सा का ज्वार उठ रहा है। उसका एक मुख्य कारण है वैचारिक प्रतिबद्धता। कुछ परम्परागत रूढ़ विचारों के साथ उनकी धारणाएं जुड़ गई हैं। कुछ तथाकथित ग्रन्थों और पुस्तकों को उसने धर्म का प्रतिनिधिशास्त्र समझ लिया है। वह न तो उसका ठीक तरह बौद्धिक विश्लेषण कर सकता है और न ही विश्लेषण प्राप्त सत्य के आधार पर उनके मोह को ठुकरा सकता है। वह बार-बार दुहराई गई धारणा एवं रूढ़िगत मान्यता के साथ बंध गया है, प्रतिबद्ध हो गया है। बस यह प्रतिबद्धता ही उसके मन की विचिकित्सा का कारण है।

'हमारा प्रस्तुत जीवन केवल आत्ममुखी होकर नहीं टिक सकता और न केवल बाह्योन्मुखी ही रह सकता है। जीवन की दो धाराएं हैं—एक बहिरंग दूसरी अंतरंग। दोनों धाराओं को साथ लेकर चलना यही तो जीवन की सफलता है। बहिरंग जीवन में विशृंखलता नहीं आए, द्वन्द्व नहीं आए इसके लिए अंतरंग जीवन की दृष्टि अपेक्षित है। अंतरंग जीवन आहार विहार आदि के रूप में बहिरंग से, शरीर आदि से सर्वथा निरपेक्ष रहकर चल नहीं सकता, इसलिए बहिरंग का सहयोग भी अपेक्षित है। भौतिक और आध्यात्मिक सर्वथा निरपेक्ष दो अलग-अलग खण्ड नहीं हो सकते बल्कि दोनों को अमुक स्थिति और मात्रा में साथ लेकर चला जा सकता है। तभी जीवन सुन्दर, उपयोगी और सुखी रह सकता है।

धर्म सम्प्रदाय की यदि सबसे घिनौनी भेंट यदि कुछ हो सकती है तो वह है वर्णाश्रम धर्म। यद्यपि वर्ण की उत्पत्ति में कार्य-धर्म की प्रमुखता ही प्रारम्भ में सर्वमान्य रही है और इसका आधार जाति थी, जो मात्र कर्तव्य निर्वाहन एवं विभाजन की व्यवस्था ही मानी गई थी। समाज में व्याप्त अनीति अत्याचार आदि का नाश कर न्याय की रक्षा करने वाले क्षत्रिय, अधिकार का मनन कर जनता में मार्ग

दर्शक ब्राह्मण व्यापार उद्योग करने वाले वैश्य, श्रम-सत्कार करने वाले शूद्र—यह था व्यवस्था का क्रम, कर्म के आधार पर। आगे इन जातियों से अनेक उपजातियाँ प्रकाश में आई जैसे, सोने का कार्य करने वाल स्वर्णकार, लोहे का काय करने वाल लुहार, लकड़ी का कार्य करने वाले बढ़ई, तथा तेली कुम्हार मोची, जुलाहा नाई, पनवाड़ी आदि अपने कार्यों से ही इस नाम से विभूषित हुए और बाद में उसे जातीयता का दर्जा देकर एक पृथक समाज की स्थापना कर ली, और समाजने उस धार्मिकता से संयुक्त कर विभेद की काफी गहरी खाई बना दी है। प्रारम्भ का रोटी-बेटी का सम्बन्ध इसी के साथ ही समाप्त हो गया। एकता बिखर गई। क्षत्रिय तपस्या और साधना से विश्वामित्र ब्राह्मण बन सकता था तो दूसरी ओर ब्राह्मण द्रोणाचार्य युद्ध विद्या में दक्ष क्षत्रियत्व का पार्ट अदा कर सकते थे। न कोई ऊँचा था, न कोई नीचा, न कोई छोटा था न कोई बड़ा, एक को प्रमुख और दूसरे को गौण नहीं समझा जाता था। न कोई पूज्य था, न कोई घृणित। राजा स्वयं अपने को प्रजा का सेवक समझता था। ब्राह्मण 'सर्वेजना सुखिनो भवन्तु' के भावों से ओत प्रोत था। मानव-मात्र मानव था। जाति की रेखाएं मानवता की रेखाएं न थीं।

"न विशेषोऽस्ति वर्णानां
सर्वं ब्राह्ममिदं जगत।
ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टं हि
कर्मभिर्वर्णतां गतम्।

सम्पूण संसार ब्रह्ममय है' आत्मवत् सर्वभूतेषु'—और

—सीया राम मय सब जग जानी, करउ प्रणाम जोरि युग पानी'

के आदर्शों पर चलने वाले देश में ही क्षत्रिय शक्ति के आधार पर ब्राह्मण विद्या के आधार पर वैश्य धन-सम्पदा के आधार पर अपने

को उच्च मानने लगे। वहीं समाज एवं देश की रीढ़ कृषक, श्रमिक सेवक ही उपेक्षा का विषय बन गया। समाज के लिए खून-पसीना बहाने वाला श्रम निष्ठ, सेवा करने वाला, समाज की गंदगी को दूर कर स्वच्छता प्रदान करने वाला स्वयं जनता की नजरों में अस्वच्छ बन गया। अस्पृश्य हो गया। विद्या पढ़ने ही ब्राह्मणों के अधिकार में थी। स्वार्थ-पोषण में अपने को श्रेष्ठ तथा अन्य को हीन बताने में उनका कुचक्र सफल रहा। अतः वर्ण भेद को धार्मिकता का चोगा पहनाने वालों में ब्राह्मण का नाम सर्व प्रथम है।

धर्म के नाम पर अस्पृश्यता के कीटाणु अपना प्रभाव अच्छी प्रकार जमा चुके हैं। इसकी जड़ें इतनी गहराई तक पहुँच चुकी हैं जिन्हें खोद कर उखाड़ फेंकना व्यक्ति के सामर्थ्य के बाहर की बात हो गई है। 'मनुस्मृति' जिसे धर्म और न्याय का प्रधान काव्य माना जाता है के अनुसार 'एक वर्ण का विवाह सम्बन्ध किसी भी अन्य वर्ण के साथ हो सकता है।' आज अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धों की बात तो दूर, एक ही जाति की उप जातियों में भी होना सम्भव नहीं है। जाति का अहं इतना बढ़ चुका है कि आपस में एक जाति दूसरी जाति का छुआ जल भी ग्रहण नहीं करती। समाज का यह घाव नासूर बन चुका है। इन्सान इन्सान से घृणा करने लगा है और यह सब हो रहा है धर्म की श्रेष्ठवादिता को लेकर। अस्पृश्यता मानवता के नाम पर एक गहरा दाग ही है मनुष्य द्वारा ही मनुष्यता का अपमान है। फिर यह धर्म का अंग कैसे हो सकता है?

अस्पृश्यता एवं साम्प्रदायिक संकीर्णता दोनों विचारों की गुलामी है, संकुचित मनोवृत्ति है। लोग कहते हैं हिंदुत्व खतरे में है। मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि भारतीयत्व ही खतरे में है और इसका कारण और कोई नहीं हम स्वयं हैं। संस्कृति और धर्म के नाम पर जिसने समाज के सक्रिय सेवक को अस्पृश्य दलित, असहाय और शूद्र

करार दिया है उसका अस्तित्व कब तक जीवित रह सकता है ? यदि एक इन्सान कुत्ते बिल्ली के बच्चों से प्यार करता है तो क्या वह अपने जैसे इन्सान के साथ प्यार नहीं कर सकता ? उनके बच्चों के साथ नहीं कर सकता ? यह जड़ता मनुष्य को कहाँ ले जाएगी कहा नहीं जा सकता ? धर्म प्रेम और प्यार की भूमिका पर आधारित होकर अपने लक्ष्य तक पहुँच नहीं पा रहा है इसका मूल कारण व्यक्ति की अहंता ही है। मातृत्व भावना से दूर हट कर हम मानव मात्र से घृणा करें क्या यही हमारी गौरवपूर्ण संस्कृति है यही हमारा धर्म है ?

महात्मा सत-मनीषियों एवं विचारकों के उपदेशों द्वारा विभेद रेखा पाटने का काफी प्रयास हुआ है और हो रहा है। सूर, तुलसी, कबीर नानक मीरा, सखूबाई एकनाथ तुकाराम बसवण्णा जी के धार्मिक उपदेश जन-जीवन के लिए महान हितकारी हो चुके हैं। राजा राममोहनराय दयानन्द सरस्वती श्रद्धानन्द, अरविन्द रामकृष्ण रामतीर्थ गुरु रवीन्द्र, लोकमान्य तिलक बाल गंगाधर गोपाल कृष्ण गोखले टाटा जी नसरवान महात्मा गांधी जवाहर नेहरू वल्लभ भाई पटेल आदि महापुरुषों ने इस दिशा में जो क्रान्तिकारी काय किया है वह भुलाया नहीं जा सकता। विशेषकर महात्मा गांधी जो विश्व मानव के रूप में अवतरित हुए थे। इस क्षेत्र में सवथा नवीन और हृदयस्पर्शी मोड़ दिया। अथक प्रयास के पश्चात कुछ जागृति अवश्य आई लेकिन अपने लक्ष्य तक वह भी न पहुँच पाई। यदसले युग और स्वतन्त्रता का गलत उपयोग होने के कारण आज की स्थिति पूर्व की स्थिति से भी बदतर होती जा रही है। अपने समय की स्थिति का अवलोकन कर महामना राजा राममोहन राय ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा था—

'The Tyranny of social customs led to the break-up of harmonious order of our society in the past on account

of which a certain kind of paralyzing evil has crept in our social structure there by degenerating our men and women India, which in the ancient age was regarded as an ideal land of saints & sages, later on sank into the death of degradation only due to the tyranny of customs we must there fore break away with those live customs if we want to survive as a velthy nation'

कुछ क्रान्तिकारियों ने परिवर्तन का साहस बटोरा भी तो कथित धर्म उपदेशकों एवं समाज की कपोलोक्तियों के समक्ष उन्हें घुटने टेक देने पड़े। इसी वर्ण-व्यवस्था का परिणाम कहिए कि जिसके आतंक से तंग आकर अधिकतर दलित वर्ग के लोगों ने अन्य धर्म (ईसाई-इस्लाम) स्वीकार कर लिए अथवा यह भी कहा जा सकता है कि दूसरे धर्म के लोग उनकी कमजोरियों का फायदा उठा कर उन्हें स्वधर्मी बना लिए। खैर जो कुछ हुआ वह सहज स्वाभाविक ही माना जाएगा। हर व्यक्ति स-सम्मान जीना चाहता है। इसके लिए कोई धर्म-सम्प्रदाय बदल दे तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है किन्तु दुःख तो इस बात का है कि इसके साथ ही अपनी राष्ट्रीयता तक छोड़ देता है। राम, कृष्ण बुद्ध और महावीर गंगा और यमुना हिमालय और काश्मीर को छोड़कर विदेशी भूमि से प्यार करने लगता है। यह राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रीय शक्तियों के लिए घातक ही नहीं, द्रोहपूर्ण काम है विश्वासघात है अन्यथा कोई किसी भी मत का उपासक हो इससे अन्तर नहीं पड़ता। देश को इस वर्ण-व्यवस्था के आधार पर बने मानव-मानव के भेद से अत्यधिक क्षति पहुंची है। आए दिन विद्रोह, तोड़-फोड़ युद्ध आदि इसी के कुपरिणाम हैं। देश का अधिक समय तक विदेशी सत्ता के आधीन रहना इसी भेद का कारण था। दोष मत या सम्प्रदाय बदलने का नहीं स्वयं उस समाज का है जिसने उसका मूल्य जाति के आधार पर करके पतित किया

है। देश में अशान्ति का वातावरण बना व्यक्ति के व्यक्तित्व का ह्रास समष्टि में देश के गौरव का ह्रास यह मूलभूत परिणाम सामने आए। किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति को अपने प्रति अस्पृश्यता का व्यवहार जितना कटु होता है किसी स्पृश्य व्यक्ति को अस्पृश्य करार दिया जाना उससे कम कटु नहीं होता।

दोष धर्म का नहीं धर्म के तथाकथित ठेकेदारों का है अस्पृश्यों की मन्दिरों ने नहीं, मन्दिर के पुजारियों ने उपेक्षा की है भगवान ने नहीं, उनके भक्तों ने उन्हें दूर रखा है, धर्म ने नहीं उसके संकीर्ण पोषकों के मन में बसने वाली संकीर्णता ने उन्हें ठुकराया है। साम्प्रदायिक-धर्म एवं जाति धर्म मानव को क्रमश मर्यादित एवं व्यवस्थित रखने के हेतु ही रहे। सम्प्रदाय एवं जाति मात्र एक विचारधारा थी एक क्रम था जीवन को जीने का किन्तु इस क्रम और विचारधारा में संकीर्णता एवं विद्वेष का अंश न था। कालचक्र के प्रभाव में आकर मनुष्य अपने द्वारा निर्मित इन रेखाओं का प्रबल समर्थक बन गया एव भूल गया इसके मूल को। जिस मार्ग का निर्माण शान्ति व्यवस्था एव अनुशासन के निमित्त हुआ था वही अशान्ति, अव्यवस्था एवं अनुशासनहीनता का मार्ग बन कर रह गया है। मनुष्य ने वह सब अपनाया जो उसे अपने पूर्वजों से विरासत में मिले थे। चिन्तन सुप्त था और उस पर हावी था—अन्धानुकरण अस्तु प्राप्य परम्पराएँ साधन ही नहीं साध्य बन गईं। धर्म एव व्यवस्था गौण हो गई, सम्प्रदाय एव जाति मुख्य। कटु सत्य तो यह है कि जाति सम्प्रदाय को ही धर्म समझा जाने लगा। विश्व इतिहास साक्षी है कि धर्म एव जाति के नाम पर हुए संघर्ष ने युद्ध और रक्तपात का सूत्रपात किया है। रंगभेद भी इसी का पर्याय वाची है। आज धर्म किस दिशा में बह रहा है यह एक चिन्तनीय विषय है। धर्म और जाति आज साम्प्रदायिकता के दल-दल में फँस गए हैं। साम्प्रदायिक-

जातियाँ साधन हो सकती हैं साध्य नहीं पर हो यह रहा है कि उसे ही साधन और साध्य दोनों माना जाने लगा है। मानव का मानवता से विश्वास उठ-सा गया है। सत्य की खोज में निकला मानव धर्म एवं जाति की भेद रेखाओं में उलझ कर रह गया है। सम्प्रदाय एवं जाति के दायरे में साध्य सत्य को पाने की चाह रखने वालों को शरीर के दर्शन हो सकते हैं। आत्मा के नहीं।

इस व्यवस्था में मूल भूत परिवर्तन की आवश्यकता है। सुधारकों नेताओं के आचरणहीन उपदेश यहाँ कारगर होने वाले नहीं। द्विवेदी जी के शब्दों में—

'वह अपूर्व समय होगा जब शताब्दियों से पददलित निर्वाक्, निरस्त्र जनता समुद्र की लहरियों की फूत्कार के समान गर्जन से अपना अधिकार मांगेगी। उस दिन हमारी सभी कल्पनाएं न जाने क्या रूप धारण करेंगी जिन्हें हम भारतीय सभ्यता हिन्दू संस्कृति आदि अस्पष्ट और भुलावे वाले शब्दों से प्रकट किया करते हैं'' ''''। आज अभिव्यक्ति में नहीं, विचारों मे अन्तःकरण में एवं व्यवहार में परिवर्तन की अपेक्षा है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जातीयता को बढ़ावा देने वाले सब कार्य बन्द कर दिए जाने चाहिए। कानून की दृष्टि से व्यापार, नौकरी, शिक्षा आदि के क्षेत्र में यह भेद नहीं है किन्तु बावजूद इसके अस्पृश्यता बनी हुई है। जो साधन इसे हटाने के लिए अपनाए गए हैं वे ही इसे प्रश्रय भी दे रहे हैं। शासन की कुछ व्यवस्थाएं इसे बनाए रखने में योग दे रही हैं। नौकरी के लिए या जनगणना के दौरान में जाति के विशेष कालम नौकरी में अछूतों को 'प्राथमिकता' क्या यह मानव को स्पृश्य अस्पृश्य (भेद) धरातल पर नहीं खड़ा करती हैं। अपने आपको अस्पृश्य कहकर, या किसी से अस्पृश्य कहलवाकर क्यों अस्पृश्यता का अन्त किया जा सकता है? क्या इससे व्यक्ति के आत्म-सम्मान को ठेस नहीं पहुँच रही है? क्या यह एक को वर्ण के आधार पर बढ़ावा देकर

दूसरे को हीन नहीं बना रही है ? आज एक योग्य ब्राह्मण भी उचित स्थान से इसलिए वंचित रह जाता है कि वह ब्राह्मण है यह क्रम तो एक ऐसा उपचार है जिससे एक रोग का निदान और दूसरे का प्रगटीकरण। वर्ण व्यवस्था के इस मकान की मरम्मत नहीं उसे ढहा कर नए सिरे से निर्माण करना है आज इस क्षेत्र म जड़ कुरेदने की आवश्यकता है नारों से काम होने वाला नहीं बिगड़ने वाला है। 'अछूत' अस्पृश्य शब्दों का प्रयोग बन्द करने की अपेक्षा है। अछूत कहकर किसी के प्रति सहानुभूति बताना मानवता का तकाजा नहीं।

शहरों के जीवन में धर्म का प्रभाव निश्चित रूप से कम हुआ है। इस क्षेत्र में रचनात्मक कार्यों की अपेक्षा है। अन्तर्जातीय विवाह, सह भोजन आपसी व्यापार सम्बन्ध आदि इसके सबसे सुन्दर समाधान एवं रचनात्मक कदम हो सकते हैं। क्लिष्टता एवं संकीर्णता विशालता एवं समरसता में बदल सकती है ऐसा करने वालों को आर्थिक एवं सामाजिक संरक्षण प्रदान कर सत्ता भी इसका रचनात्मक हल ढूंढ सकती है।

आज आवश्यकता है अन्धानुकरण से हटने की। समय के साथ जाति एवं सम्प्रदाय के आग्रह कम होने चाहिए। धर्म के मूल सिद्धान्तों को सम रखते हुए नवीन को भी अपने साथ कर लेना चाहिए। परिवर्तन ही प्रगति का आधार है। प्रसन्नता है कि नवीन पीढ़ी में धर्म एवं आचरण को परीक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा है सिद्धान्तों को तर्क की कसौटी पर कसा जा रहा है और परिणामस्वरूप जातीय एवं साम्प्रदायिक आग्रह कम हो रहा है। बहुधा जनता ने इसे धर्म का ह्रास और आने वाली पीढ़ी की धर्म के प्रति अनास्था समझा है— कि अब की धर्म का अर्थ क्रियाकाण्ड जातीय संघर्ष मात्र ही नहीं। व्यापार में धर्म शिक्षा में धर्म राजकीय कर्तव्यों में धर्म कृषि में धर्म, व्यवहार में धर्म धर्म जीवन व्यवहार का अभिन्न अंग बन जाय तभी—

वह धर्म होगा। आचार्य रजनीश जी के शब्दों में— धर्म कोई अमूर्त कल्पना नहीं है। धर्म तो है प्रत्यक्ष व्यवहार। धर्म कोई विचार नहीं धर्म तो है अनुभूति! जिन बातों से हमें दुःख होता है वे बातें हम से दूसरों के प्रति न हों ऐसी चित्त दिशा में प्रतिष्ठा ही धर्म है। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी भी कहते हैं— 'आज एक ऐसी धर्म क्रांति की आवश्यकता है जो धर्म के सड़े गले और जर्जर स्वरूप को फेंक कर उसका वास्तविक और स्वस्थ स्वरूप लोगों के सामने लाए। —यदि धर्म जीवन का अंग न बनकर मात्र आदर्श एवं पूजा का विषय ही बना रहा तो आने वाली पीढ़ी की धर्म के प्रति आस्था उठ जाएगी और परिणाम होगा अनैतिक जीवन! जिसका प्रारम्भ हम आज के जन वातावरण में पा सकते हैं। यही कारण है कि यह विज्ञान, प्रयोग मनुष्य को चन्द्र तक पहुंचा विशाल काय राज्य भवन, दीर्घकाय जलस्रोत, बड़े लम्बे-लम्बे रेल मार्ग और यातायात के प्रचुर साधन, मिलें और कल-कारखाने तथा अन्यो त्पादन की प्रक्रियाएं होते हुए भी देश का निर्माण नहीं हो रहा है और वह इसलिए कि यही मात्र निर्माण नहीं। निर्माण देश का तब होता है जब देश का हर नागरिक आचरणशील हो देश-हित ही जिसका एक मात्र लक्ष्य हो स्वहित को गौणकर देशभक्ति, त्याग, कर्तव्य निष्ठा परहित प्रेम आदि को जहाँ प्राथमिकता देने की वृत्ति हो। किन्तु दुःख होता है कि इस नैतिकता के अभाव में अनुशासन हीनता अमानुषिक वृत्तियाँ अपना जोर जमा रही हैं। तोड़-फोड़ हिंसा, हड़ताल घेराव जीवन की दैनिक क्रियाएं बन गई। व्यक्ति येन-केन-प्रकारेण अपने स्वार्थ की सिद्धि चाहता है—वह भूल गया है कि उसके निजी स्वार्थ में देश की सम्पत्ति देश की जनता देश के गौरव का कितनी क्षति पहुँच सकती है? अन्न का अभाव काला बाजार, प्रान्त प्रान्त की लड़ाई पानी के लिए झगड़ा किसी को गिराने के षड्यन्त्र मन्त्री पदवी के लिए झूठे फतवे जन सेवा आदि अधिक

लोगों के लिए नेतृत्व की भूख बन गई है और इसके लिए वे कुछ भी अनर्थ करवाने में नहीं हिचकते। लाखों करोड़ों की धन सम्पत्ति एवं जन धन इससे नष्ट हो रहा है। यह सब धर्म का ह्रास नहीं तो और क्या है ? मानव मानवता से ही हट रहा है !

एक समय की बात है कि यूनान की राजधानी ऐथेन्स में दार्शनिक सुकरात दिन मे भी जब कि सूर्य का प्रकाश उपलब्ध था—हाथ मे एक जलती हुई मशाल लिए चले जा रहे थे। जनता ने आश्चर्य के साथ इस घटना को देखा। कुछ अपनी जिज्ञासा रोक न सके और पूछ बैठे इसका कारण ? सुकरात ने बताया कि वह मनुष्य की खोज में निकले हैं। जनता का आश्चर्य और बढ़ा !! क्या वे मनुष्य नहीं हैं ? उत्तर था–'नहीं, जब मनुष्य म मनुष्यत्व नहीं, तो फिर वह मनुष्य कैसे ?'

राज्य कर्मचारी, पदाधिकारी साधारण व्यापारी वर्ग, सभी में यत्र-तत्र मिलावट है बनावटीपन है, मानवता मात्र नाम का विषय रह गयी है धर्म मात्र विचार एवं आडम्बर का विषय रह गया है आचरण का नहीं। इस अनैतिकता के बढ़ते हुए रंग में मनुष्य के जीवन का उद्देश्य खो गया है। मनुष्य चल रहा है – मात्र चलने के लिए बढ़ रहा है मात्र बढ़ने के लिए, जी रहा है, मात्र जीने के लिए कोई चरम बिन्दु सामने नहीं है। जो गति दी गई है—उसके प्रभाव में बिना विवेक के बिना लक्ष्य एवं उद्देश्य के अनुकरण किए चले जा रहा है। मनुष्य नित्य नए रास्ते निकालता है परन्तु कालान्तर में उन्हीं का गुलाम बन जाता है। धर्म के साथ भी यही हुआ बीतते समय के साथ धर्म मात्र अनुकरण का विषय रह गया साम्प्रदायिक एवं जातीय भावना में ऊँच-नीच के भेद का विकास होता रहा एक के स्वार्थ साधन में दूसरे का शोषण चलता रहा और क्रमश: धर्म की वास्तविकता सुप्त प्राय हो गई। शिक्षा का विकास हुआ है सुख के साधन जुटाए गए हैं, अनेकानेक गतिमान विमान बिछाए होने पर भी

आज मानव सुखी नहीं है और उसके मूल में निहित है समाज की परम्परा का दबाव या उसके स्वातन्त्र्य पर एक कुण्ठा ही है। मनुष्य और सब कुछ बन गया है, बन रहा है। किन्तु सच्चे अर्थों में मनुष्य नहीं बन सका है बन रहा है। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव अतिवाद की ओर ले जा रहा है जहाँ परम्परा, सम्प्रदाय एवं जाति का अनुकरण राष्ट्रीय हित से उचित नहीं तो पाश्चात्यता का अन्धानुकरण भी किसी स्थिति में उचित नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता है तर्क के साथ—विवेकजन्य बुद्धि की। विषय की उपयोगिता को पहचाना जाय। आज नैतिक पतन में एवं सत्य से विहीन होकर मानव द्वारा ही किए गए अमानवीय कृत्यों से दैनिक पत्र भरे पड़े हैं। भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता चरम सीमा को छूना चाहते हैं। निजी स्वार्थ हल हुए बिना आज व्यक्ति दूसरे का उचित काम भी समय पर नहीं करता। आज आदर्श के दिखावे में बड़ी-बड़ी आदर्श की बातें की जाती हैं सरलता एवं देशहित का स्वांग रचा जाता है त्याग एवं कर्तव्य पर लम्बे-चौड़े भाषण दिए जाते हैं। 'तुम फल की इच्छा के बिना काम करते रहो'—गीता का उद्धरण पेश करते हुए अपने आपको निस्वार्थ सेवक का खिताब देते हैं। किन्तु इन्हीं में से अधिकांश लोगों का जीवन अन्दर से खोखला होता है। इसी आडम्बर के कारण आज जनता धर्म से ऊब चुकी है एवं धर्म से हटने लगी है। सादगी, स्व-संस्कृति, धर्म देश रक्षा पर भाषण करने वालों का जीवन इतना कोरा रहे—यह बातों की बकवास नहीं तो और क्या है ?

सफेद पोशाक की आड़ में रिश्वत का बाजार गर्म है। फाइल तब तक आगे नहीं जाती जब तक कि रक्षक की जेब न भर दी जाय। सबल सामन्तीशाही ओर पकड़ रही है। कहीं गरीबों का शोषण हो रहा है तो कहीं श्रमिक मालिक का शोषण कर रहा है।

सहानुभूति, प्रेम भ्रातृत्व, ईमानदारी, इन्सानियत—धर्म का तकाजा होना चाहिए किन्तु इसके विपरीत धार्मिक वे समझे जाते हैं जो धार्मिक क्रिया काण्ड का बहाना करें। सूर्य के प्रकाश में स्त्री-पुरुष का मिलना, बात करना आज भी एक नेक इन्सान को चरित्र हीनता का खिताब दे सकता है, किन्तु चाँद के अन्धेरे में जनता की नजरों से बचकर कुछ भी किया जा सकता है। धर्म आत्मा का विषय नहीं जनता के भय का विषय रह गया है। यथार्थ की बात करने वाला आज उपेक्षा का विषय बन कर जनता की नजरों से गिर जाता है, किन्तु यथार्थ से दूर झूठे आदर्शों की बातें बनाने वाला पूज्य बन जाता है। पशुओं की रक्षा के नारे लगाए जाते हैं। किन्तु इन्सान का इन्सान एवं अपनी इन्सानियत के रक्षा की कोई चिन्ता नहीं है। राष्ट्र सेवक सच्चे सुधारक, राष्ट्र हित साहित्य-निर्माता आज आदर का पात्र नहीं समझा जाता बल्कि जिन्होंने इसका प्रमाण-पत्र पा लिया है, जो आडम्बर कर सकता है, वही आज पूजा का पात्र बना है। सच्चे धार्मिक त्यागी महात्मा भी आज शक की दृष्टि से देखे जाने लगे हैं। बनावटीपन के इस बढ़ते रोग में असली भी नकली ही लग रहा है। प्रशासन एवं सुविधा के नाम पर देश को टुकड़ों में बांटा जा रहा है। जाति एवं सम्प्रदाय चुनाव जीतने के सफल अभियान बन चुके हैं। निर्माण एवं धर्म के नाम पर जहां बड़े-बड़े प्रशासनिक भवन एवं धार्मिक स्थान बन रहे हैं उसी देश का व्यक्ति आज भी फुटपाथ पर सोता है और झूठे पत्तों को साफ कर अपना पेट पालता है। टेक्स की चोरी करने वाले एवं रिश्वत लेने वाले दोनों सुरक्षित हैं—एक दूसरे के आश्रय में। अलब खाना शराब पीना, धन का दिखावा करना, बड़ों के साथ उठना-बैठना, अधिक से अधिक विदेशी बनना आज बड़े लोगों की परिभाषा बन गयी है। देशी पोशाक स्वदेशी भाव आज पिछड़ेपन की निशानी रह गई है। सरकार सत्ता की मालिक अवश्य कहलाती है किन्तु वह जनता के

द्वाप कठपुतली बना हुई है। एक ही देश के हम वासी जाति, धर्म, भाषा एवं प्रांत के नाम पर बटे हुए हैं क्या यही हमारे धर्म का आदर्श है ?

करुणा समभाव, स्नेह, ममत्व मानवता के इन गुणों के स्थान पर विरोध द्वेष घृणा, हिंसा, स्वार्थ आज व्यक्ति के व्यक्तित्व के अंग बन चुके हैं। धर्म की उपेक्षा मानवता की उपेक्षा है एवं मानवता की उपेक्षा राष्ट्र की उपेक्षा ! वर्तमान को बिगाड़ कर भविष्य को बनाने की बात करने वाले कभी सुधारक देश रक्षक हो नहीं सकते !

अधर्म आग उगलता है तो धर्म शीतजल ! अधर्म कलह, विरोध वैमनस्य, रक्तपात एवं संघर्ष का हेतु बनता है तो धर्म प्रेम, मैत्री सौहार्द मृदुता स्नेह एवं भ्रातृत्व का ! युद्धों-संघर्षों की ज्वाला और अणुयुद्धों की कल्पना मात्र से आज मानवता सिहर उठती है। अधर्म में शांति ढूंढना मानवता की मृगतृष्णा ही है।

क्रोध को क्रोध से दबाने का प्रयास क्रोध की भयंकरता को जाग्रत करने का हेतु ही बन सकता है। कलह, ध्वंस घृणा आक्रोश निजी शक्तियों का जहाँ अपव्यय है, राष्ट्रीय शक्तियों का दुरुपयोग भी। स्वार्थ साधन में मानव मानव का भेद साम्प्रदायिक कट्टरता की अपनी महत्ता में औरों का विरोध भेदरेखा को बढ़ाने का कारण ही हो सकता है। अपने हित में दूसरों का अहित संघर्ष का विषय ही, बन सकता है !

शिक्षा, विज्ञान विचार-स्वातन्त्र्य-वस्त्र निर्माण के विषय ही आध्यात्मिकता के अभाव में विध्वंस का खतरा बना देते हैं। अणुबम एवं विध्वंसकारी भयंकर शक्तियों का खतरा यदि है तो उसमें निहित है। मानव की आध्यात्मिकता से पलायन की प्रवृत्ति।

मत जाति एवं सम्प्रदाय के नाम पर बनी भेद रेखा को पाटना

होगा ! मान्यता में भेद होना स्वभाविक है किन्तु वह कटुता का पोषक तो न बने, एक ही प्रकाशपुञ्ज के यह रंग आपस में टकराते तो नहीं। मानव साम्प्रदायिक संकीर्णता से ऊपर उठ कर स्वहित एवं जनहित की राह पर चलते हुए मानवता के मार्ग को प्रशस्त करे। यही आज की आवश्यकता है।

वस्तुतः सब धर्मों का मूल तत्व मानव कल्याण, मानव में मानवता को प्रतिष्ठित करना रहा है। फिर उसे धर्म, सम्प्रदाय, जाति के नाम से क्यों किया जाय क्यों न उसमें मानवता का ही अंकन किया जाय— धर्म-नाम भेद के बिना ! धम को साम्प्रदायिकता से परे आध्यात्मिकता मानवता एव मात्र धर्म क नाम से पहचाना जाय, रेखा को रेखा ही समझा जाय उससे अधिक नहीं, तो भेद की रेखाएँ धूमिल हो सकती हैं। धर्म का उद्‌गम स्थल भारत सुप्रसिद्ध दार्शनिक एवं ऋषि मुनियों का भारत मानवता एवं मुक्ति के विचारों का भारत प्राचीनतम धर्म ग्रन्थों का निर्माण स्थल भारत देश ही नहीं विश्व शान्ति का हिमायती भारत ससम्मान विश्व का मार्गदर्शन कर सकता है, समस्याएँ स्वयं सुलझ सकती हैं, धर्म अपना खोया हुआ सम्मान फिर से प्राप्त कर सकता है।

आज प्राचीन एवं नवीन में समन्वयीकरण की अपेक्षा है। परम्परा से प्राप्त मान्यताओं को तर्क की कसौटी पर कसने की आवश्यकता है, सीमित दायरों से ऊपर उठने की अपेक्षा है धर्म को पुस्तकों मन्दिरों मस्जिदों मठों और धर्माचार्यों की कैद से ऊपर उठ कर व्यवहार का विषय बन देश हित के अनुकूल अपनी भूमिका अदा करनी है। यदि समय रहते ऐसा न किया गया तो आने वाली पीढ़ी धर्म को मात्र ढकोसला कहकर मजाक उठायगी एवं अनतिकता का अजगर उसे निगल जायगा। अति आधुनिक संस्कार उसे हिंसा और वैमनस्य के उस कगार पर पहुँचा देंगे जहाँ से उसका लौटना कदापि संभव

न होगा। अमानुषिक वृत्तियाँ मानवीय वृत्तियों पर हावी हो जायेंगी। शक्तियों का विकेन्द्रीकरण देश के अधःपतन का स्रोत बनेगा। युद्ध एवं हिंसा से सम्पूर्ण मानव संस्कृति विनाश के चरम बिन्दु पर होगी।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।"

मानव में मानवता, इन्सानियत, मनुष्यत्व की स्थापना ही धर्म का लक्ष्य है और यही राष्ट्र निर्माण की बुनियाद।●

सामाजिक सिद्धान्तों का आग्रह नहीं, विवेक हो !

कुछ ही क्षण पूर्व रेडियो समाचार सुने कि मानव-निर्मित अन्तरिक्ष-यान [Mariner—6] कल्पनातीत दूर मंगल ग्रह के छाया चित्रों को भेज रहा है, चन्द्रमण्डल पर छोड़ा गया मानव-निर्मित सीसमोग्राफी-यन्त्र चन्द्रमा से पृथ्वी को चन्द्र-कम्पन प्रेषित कर रहा है। कुछ ही दिन पूर्व मानव की चन्द्रमा पर पहुँच एवं वहाँ की मिट्टी लेकर सकुशल लौटना, मानव की चन्द्रमा पर विजय की इस अद्भुत घटना ने बाह्याकाश विचरण में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया, सदियों के स्वप्न साकार हो उठे। बढ़ते हुए पथ पर मानव की आशातीत सफलता, विजय उसके बुद्धिबल, साहस, संकल्पपूर्ण लक्ष्य का ही परिणाम है। मनुष्य की इन सिद्धियों पर सम्पूर्ण मानव समाज को गर्व सहज स्वाभाविक ही है। भौतिक उपलब्धियों के क्षेत्र में मानव ने काफी सफलता प्राप्त की है और उन सबके पीछे उद्देश्य रहा है मानव-शांति ! क्या यह उपलब्धियाँ मानव को शांति के चरम लक्ष्य तक पहुँचा सकेंगी ? यही एक प्रश्न है—जिज्ञासा है !

विचारों ने करवट ली। कुछ ही दिन पूर्व की घटनाएं समाधान ढूँढ रही थी, हिंसा को रोकने वाले रक्षकों व शासकों के प्रति हिंसात्मक कृत्य किए शिक्षा के पुजारियों ने ही शिक्षा के मन्दिर विश्वविद्यालय में बम का प्रयोग कर अपने भगवान का अपमान

किया, मानव ने मानव को आग में जला देने का षडयन्त्र किया, राष्ट्रीय प्रगति तथा शांति के नाम पर एक ही भाषा भाषी प्रदेश के दो भागों की मांग ने राष्ट्र की सम्पत्ति का दुरुपयोग व शांति व्यवस्था को भंग किया मानव प्राप्त अनुभूतियों, उपलब्धियों पर गर्व किया जाय या विनाश के कगार पर खड़े मानव के कृत्यों पर दुःख ?

जहां यह घटनाएं हैं एक ओर मानव प्रगति के असीम चरण की, वहीं दूसरी ओर विनाश के अन्तिम चरण की भी। स्थितियाँ आश्चर्य का विषय ही नहीं अपितु विडम्बना का विषय हैं। इस विकास-विनाश की खींचातानी में मानव कहाँ जा रहा है ? उसका भविष्य क्या है ? लक्ष्य क्या है ? कह नहीं सकते।

आज समाज को जब सुनते हैं जिज्ञासा की दृष्टि से तो उसकी आँखों में एक अपरिमित उत्साह दृष्टिगत होता है, उसकी बातों में बुद्धि का प्राबल्य और उसकी भाषा में मंजिल को पाने की चाह नजर आती है। वही उसका व्यवहार, उसके बढ़ते रुकते कदम, उसकी फँसती हुई दृष्टि विपरीत दिशागामी लगती है। आचार और विचार का यह भेद, भव्य, किन्तु लक्ष्य विमुख राह मानव समाज को विकास और विनाश के किस कगार पर खड़ा कर देगी—यह चिंतन का विषय है।

आज समाज पहले से अधिक सम्पन्न है सुख-सुविधा, वैभव-पूर्ण साधन उसके अपने है। वह स्वतन्त्र है अपनी मनचाही जिन्दगी जीने के लिए। सुख-सुविधा के साधन प्राप्त होने पर भी मानव अशांत है, अतृप्त है, असंतुष्ट है भयभीत है अपने चारों ओर फैले इस विषम वातावरण से। डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दों में '*we must admit that our society still suffers from grave economic* injustices social oppressions caste prejudices communal jealousies, provincial autogonisms and linguistic

animosities These are a challenge to our competence, our courage our wisdom If we are to survive as a civilized society we have to get rid of these abuses as soon as possible and by civilized methods

आज जब किसी से उनके लक्ष्य के विषय में प्रश्न होता है तो शत-प्रतिशत उत्तर आजीविका से सम्बन्धित होता है। कटु सत्य कहें तो रोटी और स्वार्थ ही इनका लक्ष्य होता है पर दुःख तो इस बात का है कि वे अपने सीमित लक्ष्य की सम्पूर्ति भी नहीं कर पाते । अच्छी नौकरी उत्तम व्यवसाय और अधिक पैसा ही जीवन का क्रम बन चुका है। किसी को आज के गुजारे की चिन्ता है तो किसी को कल के भोजन की, तो कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें भर पेट रोटी तो मिलती है परन्तु सन्तोष के अभाव में शान्ति नहीं मिलती। इन सीमित उद्देश्यों की सीमा में बँधा मानव जीवन के सही मार्ग से दिग्भ्रम हो चुका है। पथिक पथ पर चल तो रहा है किन्तु उसे अपने गन्तव्य का पता नहीं मनुष्य जी अवश्य रहा है किन्तु उसे नहीं मालूम क्यों जी रहा है? जीने के लिए ही जीना या किसी उद्देश्य के लिए जीना इसकी भेद-रेखा को जब तक मानव पहचानेगा नहीं तब तक सुख उसके लिए मृग-मरीचिका ही रहेगी। दीप के प्रकाश में अनेकों पतंगे जन्म लेते हैं, दीप के चारों ओर मँडराते हुए कुछ क्षण में ही अपने जीवन को नष्ट करते हैं किन्तु प्रकाश उन्हें सुख नहीं दे पाता। इसी तरह मानव भी सुख की नाना उपलब्धियों के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहा है किन्तु उसे वह प्राप्त नहीं कर पाता। अपने अमूल्य सर्व-शक्तिमान जीवन का नष्ट कर देना व्यक्तिश अपराध भले न हो, किन्तु एक सामाजिक तथा राष्ट्रीय दोष अवश्य है।

'स जातो येन जातेन याति वंशसमुन्नतिम्
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।

जन्म उसी का सफल है जिसके पैदा होने से समाज और राष्ट्र उन्नति करें वर्ना इस परिवर्तनशील संसार में मरना या जन्म लेना सामान्य बात है।

आज मानवता उच्छृंखल हो चुकी है, मानव की प्राचीन विचार एवं मान्यताओं से जहाँ आस्था उठ चुकी है वहीं जीवन का नवीन पथ भी वह निर्धारित नहीं कर सका है और इसी उलझन में वह न सभ्य रहा है न आधुनिक, न उसके पैर धरती पर हैं और न आकाश में, न उसकी नैया इस पार और न उस पार, मँझधार के बीच डोल रही मानव की नैया किस करवट मुड़ेगी ? नहीं कहा जा सकता।

आज मानव स्वार्थ के पीछे अन्धा हो गया है। वह अपने स्वार्थ के लिए घृणित से घृणित कार्य करने में भी संकोच नहीं करता। छोटे छोटे स्वार्थों को लेकर झगड़े, पारिवारिक वैमनस्य, संघर्ष एवं अव्यवस्था-पूर्ण जीवन उसका ध्येय बन चुका है। माँ-बाप, भाई भगिनी, पति-पत्नी पुत्र-पुत्री एवं मित्र रिश्ते-नाते आदि भी मतलब के बन चुके हैं, सबका आपसी प्रेम तब तक है जब तक एक दूसरे का स्वार्थ पलता रहे जहाँ भी अपनी इज्जत, अपना स्वार्थ, अपनी प्रतिष्ठा, अपने अहम् का प्रश्न आता है वहाँ दूसरे के अर्थ का दमन कर दिया जाता है।

बड़े-बड़े दानी कहलाने वाले भी पैसा देते हैं स्वार्थ, के नाम पर अपने नाम की भूख मिटाने के लिए दानी एवं महात्मा कहलाने के लिए। बड़े-बड़े भवन बनाए जाते हैं स्वार्थ के नाम पर। सेवा और परोपकार का जीवन जीने वाले अनेकों डाक्टर जिन्होंने कठिन रोगों का निदान कर निराश रोगियों के दिलों में आशा का संचार किया, किन्तु उन रोगियों का उन्होंने उपचार किया जिनसे उन्हें कुछ मिलने वाला था। क्या कभी उन्होंने दीन हीन रोगियों के रोगों का निदान करने का प्रयत्न किया जिनसे उन्हें कुछ भी मिलने वाला न था

सिवाय हृम-दर्दी के ? शायद कम ! न्याय के रक्षक माने जाने वाले वकीलों से पूछिए क्या कभी किसी गरीब के सत्य का समर्थन किया है ? बड़े-बड़े पदाधिकारी देश सेवा के नाम पर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। रिश्वत का कारोबार बढ़ रहा है। पुरुष समाज स्वार्थ साधन में नारी पर बलात् घूंघट तथा परम्पराओं की आवश्यकता को थोप रहा है। अपने स्वार्थ साधन में अपनी संतान का विवाह अर्थ की कीमत पर कर रहा है। अपने को लांछन से बचाने के लिए दूसरों को अपराधी ठहरा रहा है। अपनी सम्प्रदाय एवं जाति को श्रेष्ठ बताने के लिए दूसरे सम्प्रदाय तथा जाति के अच्छे गुणों को भी बुरा बता रहा है। शिक्षक शिक्षक नहीं रहा है शिक्षार्थी न शिक्षार्थी ! एक समाज दूसरे समाज को एवं प्रान्त दूसरे प्रान्त को एक देश दूसरे देश को समान दृष्टि से नहीं देखता। गीता का यह वाक्य— "कर्मण्येवाधिकारस्ते, माफलेषु कदाचन्' 'फल की प्रतीक्षा किए बिना कर्म करते रहो किन्तु आज फल की चिन्ता है, कर्म की नहीं। किसी को इस बात का गम नहीं कि उनके स्वार्थ में अनेकों के स्वार्थ कुचले जा रहे हैं। जब व्यक्ति समाज और राष्ट्र सब अपना अपना उद्देश्य अपना गन्तव्य स्वार्थ' बना चुके हैं फिर कहाँ समूह शांति ! सामूहिक सुख ? व्यक्ति समाज और राष्ट्र तीनों सापेक्ष विषय हैं। व्यक्ति ही समाज का प्रतिबिम्ब है, समाज ही राष्ट्र का रूप। यदि व्यक्ति का चिंतन और व्यवहार राष्ट्र-परक बना तो निश्चित ही समाज और राष्ट्र प्रगति की सही दिशा की ओर बढ़ सकेंगे। व्यक्ति समाज और राष्ट्र से अलग नहीं राष्ट्र और समाज व्यक्तियों के समूह संगठन का ही पर्याय है। यदि व्यक्ति ने ठीक तरह से जीना सीख लिया यदि व्यक्ति ने अपने जीवन को लक्ष्य की मर्यादा में रखा यदि व्यक्ति ने सच्चे अर्थों में स्व-निर्माण कर लिया तो समाज और राष्ट्र का निर्माण स्वतः ही सिद्ध हो जाएगा। आज अपने इस उद्देश्य की

संपूर्ति के लिए अंकुरों को नई दिशाएं देनी होंगी और इसके लिए पहल करनी होगी शिक्षकों, अभिभावकों एवं अधिकारियों को।

जिस तरह के बीजों को बोया जाता है, जिस तरह का पानी दिया जाता है जिस तरह का खाद उसे सुलभ होता है और जैसी उसकी देख भाल की जाती है—वैसे ही वृक्ष का निर्माण होता है। उसके बाल्य-काल में जब कि वह मात्र पौधा होता है माली उसे जैसा मोड़ना चाहे मोड़ सकता है। सुशिक्षित परिश्रमी माली के निर्देशन में पल रहा पौधा निश्चित ही सुन्दर सशक्त वृक्ष का रूप ग्रहण करता है। मैं यह नहीं कहता कि उन पौधों का जो प्रकृति पर निर्भर हैं जिनका कोई संरक्षक नहीं गति नहीं पाते ऐसे पौधे जो प्रकृति पर निभर हैं वे अपनी बीज शक्ति और प्रकृति के अनुकूल वातावरण से संरक्षित हो पलते एवं बढ़ते हैं। क्रम भेद से संरक्षण की अपेक्षा दोनों को है।

समय की बात है, एक पिता अपने पुत्र के साथ जा रहा था। वे बस स्टेण्ड के निकट पहुँचे इससे पूर्व ही बस स्टेण्ड की ओर बढ़ गई। बालक ने कहा पिताजी 'बस' नहीं मिलेगी' पिता ने कहा 'दौड़कर प्रयत्न तो करें'। पिता-पुत्र दौड़ने लग बस मिल गई। बस में बैठते ही बालक न अपने हाथ की पुस्तक खोलते हुए इतनी बड़ी पुस्तक पढ़ने म असमर्थता व्यक्त की। पिता ने स्नेह से कहा 'पूरी पुस्तक नहीं एक एक पृष्ठ के विषय में सोचो और पढ़ो, दस मील की यात्रा है तो दस मील के विषय में नहीं प्रत्येक फर्लांग को तय करने का सोचो इससे मंजिल असाध्य न होगी। इस तरह वे अभिभावक बच्चों में प्रेरणा स्फूर्ति एवं उत्साह जागृत कर उन्हें गौरवशाली बना सकते हैं। यदि देश क सर्व अभिभावकों में इस तरह की प्रवृत्ति होती तो देश का नक्शा ही बदल गया होता। किन्तु दुःख होता है कि बहुधा अभिभावक बच्चों के निर्माण से उदासीन रहते हैं। प्रत्येक ने

अपने बच्चों में राम की निष्ठा शिवाजी का साहस, सुभाष का तेज, गांधी का स्वभाव, राधाकृष्ण की बुद्धि इन सबको पाने की इच्छा तो की है, किन्तु प्रयास नहीं किया। बहुधा बच्चों के लालन-पालन व पोषण में बरता गया निराशापूर्ण व्यवहार अंधकारपूर्ण भविष्य का कारण है। बढ़ती हुई फैशनपरस्ती में माँ के प्यार की जगह दाई की गोद उसे मिलती है जहाँ वात्सल्य एवं प्यार की जगह कटुता से भरी है। अनेक बच्चों के बीच पलने वाले बच्चों में कुछ अनायास उपेक्षा के विषय बन जाते हैं। नर्सरी विद्यालय बाल मन्दिर में दाखिल कर अभिभावक अपनी कर्तव्य-मुक्ति समझते हैं। छोटी-छोटी बातों पर डाँटना सुनिश्चित मार्ग दर्शन व उनकी प्रवृत्तियों का दमन करना उनके भविष्य का शोषण करना है। बच्चों के प्रति अधिकार-पूर्ण शासन की अपेक्षा नहीं बल्कि प्यार-पूरित अनुशासन की अपेक्षा है। बच्चों का लालन-पालन ही नहीं उन्हें सुसंस्कारित करना भी माँ-बाप का कर्तव्य है।

आज बालक घर नामक एक कारागृह में बन्दी बनकर रहता है। अभिभावकों के मार्ग-दर्शन के नाटक में बालकों की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता छीन ली जाती है। घर का अगुआ ही सबका रक्षक एवं मार्ग दर्शक होता है। मैं पिता हूँ घर का मालिक हूँ, मेरी इच्छा से ही उस चलना है बालक अरे! यह क्या जानता है' ?—क्या मैं उसका हित नहीं चाहता ? इन विचारों की परम्परा में उसका अभिभावक बच्चों का हित निश्चित रूप से चाहता है किन्तु नहीं जानता कौन सा कार्य उसके लिए हितकर है और कौन सा अहितकर ? अच्छा बनाने की चाह में कठोर शासन और अधिकार से बच्चे को नीरस बना दिया जाता है। उसके खाने-पीने रहने की भावना उसकी खेल की प्रवृत्तियाँ उसकी शिक्षा सब बड़ों के निर्देशन से संचालित होती हैं। बड़ों के निर्देशन का जहाँ तक प्रश्न है ठीक है किन्तु इसमें दूसरों

की रुचि इच्छा, का विवेक भी होना चाहिए। विपरीत रुचि की शिक्षा में बच्चे आशातीत प्रगति नहीं कर पाते प्रतिभा का विकास नहीं कर पाते। उत्साह-हीन शिक्षा, शिक्षा अवश्य होती है किन्तु वह जीवन का विषय नहीं। प्रत्येक कदम पर दूसरों के निर्देशन पर चला बालक बड़ा होने पर इसी बात का आदी हो जाता है। मानसिक विकास विवेचना-शक्ति, स्वतन्त्र चिन्तन कार्य-क्षमता को खोकर उत्साह-हीन मशीन बन जाता है। जिसका काम केवल चलना है।

मानसिक दासताओं में पला व्यक्ति परम्परा का पोषण कर सकता है और कुछ नहीं। जाति भेद, साम्प्रदायिक आग्रह, अनेकानेक रूढ़ परम्पराएं सदियों से इसलिए चलती आ रही हैं कि नवीन पीढ़ी पर मानसिक दासता को थोप दिया गया, इन्हीं संस्कारों को संस्कारित किया गया। आज उस रेखा से ऊपर उठकर कोई देखना नहीं चाहता; उस बन्धन से मुक्त होकर कोई नवीन चिन्तन नहीं चाहता विरासत में प्राप्त कैद से छूट कर कोई नई दिशा नहीं चाहता। रह रहे मकान की प्रत्येक ईंट एवं उसमें रक्षित प्रत्येक पदार्थ से हमारा इतना मोह हो गया है कि दरारें, ऊबड़खाबड़ आंगन टपकती छत एवं ढहती दीवारों के बावजूद भी हम मकान छोड़ने के लिए तैयार नहीं इतना ही नहीं जब वह मकान ढहकर ढेर हो जाता है और हम उसके नीचे दबे बेहोश अवस्था में होते हैं, तब भी हमारा ध्यान उसी म रक्षित पदार्थों को इकट्ठा करने की ओर होता है। नया मकान बनाते समय उन्हीं सड़ी-टूटी ईंटों को फिर से नई ईंटों के साथ लगाने का प्रयत्न करते हैं। यही परम्पराएं रूढ़ मान्यताएं पर भी चार दीवारी बन चुकी है एक नहीं पूरा समाज इस उलझन में उलझ गया है। इसने अपना जाल इस तरह फैलाया है कि कोई चाहत पर भी उन्मुक्त नहीं हो पाता। समाज की प्रगति पर लगी यह गड़ियां जहां इसे बढ़ने से रोक रही हैं, वहीं लगी हथकड़ियां इन बेड़ियों को तोड़ने में भी बाधक

रहो हैं। आज अपेक्षा है—संयुक्त शक्ति की जो इस जाल को उठाकर फेंक दें और उससे मुक्त इन्सान दूसरे की बेड़ियाँ एवं कड़ियों को तोड़ने का प्रयास करें।

नवीन वर्ग में भी इस तरह के संकुचित, संकीर्ण, संस्कारों को संस्कारित करना राष्ट्र के साथ समाज के साथ उसके विकास के साथ विद्रोह करना ही है।

बालक जब युवा बनता है तब भी अभिभावकों के अधिकारपूर्ण शासन से बच नहीं पाता। कई विवाह अभिभावकों के निर्णय पर ही होते हैं, जहाँ बच्चों की राय तक नहीं ली जाती और यदि राय ली भी जाती है तो वह राय राय नहीं होती मात्र एक हामी होती है। पहले से ही बड़ों की आज्ञा का ऐसा भय बना रहता है कि विपरीत विचार देने का साहस तक नहीं होता। परिणाम-स्वरूप प्राय दाम्पत्य जीवन नीरस होते देखा गया है इसमें निहित है समाज की परम्परा जिसके आधार पर अभिभावकों को अपने बच्चों की सम्मति तक लेने की आवश्यकता भी महसूस नहीं होती। दोष अभिभावकों का नहीं उनके आस-पास के वातावरण का एवं उनके संस्कारों का है।

विवाह का उद्देश्य है दो हृदयों का एकीकरण स्त्री-पुरुष को एकता के सूत्र में पिरोकर सदा सर्वदा के लिए एक दूसरे का पूरक बना देना। समाज की मर्यादा एवं व्यवस्था के साथ ही विवाह जीवन की अनिवार्य आवश्यकता भी है। वे एक दूसरे के पूरक होते हैं। पत्नी जीवन में स्फूर्तिदायिनी का काम कर सकती है उसका जीवन 'स्व' और 'पर' के हित में होता है यदार्ते व पत्नि प्रेयसिका हो।

'कार्येषु दासी करणेषु मंत्री रूपेण लक्ष्मी क्षमया धरित्री।
भोज्येषु माता, शयनेषु रम्भा षट् कर्म युक्ता कुल धर्मपत्नी।"

माँ बहिन पुत्री पत्नि, दासी प्रेमिका प्रत्येक क्षेत्र में कुल-वधु का व्यक्तित्व पूर्ण होता है।

अपत्यं च कलत्रं च सतां सगतिरेव च ।
संसार-ताप तप्तानां तिस्रो विश्राम भूमयः ॥

स्त्री पुरुष के लिए स्फूर्ति का स्थल है जहाँ से वह फिर नई चेतना लेकर अपने कार्य में जुट जाता है या पुरुष स्त्री के लिए आधार, मार्ग-दर्शक एवं जीवन का सम्बल ! स्त्री जहाँ मनुष्य को अकर्मण्य बना सकती है, वहीं वह हजारों को प्रेरणा भी दे सकती है। कालीदास तुलसीदास यदि विश्व प्रसिद्ध कवि बन सके तो उसके मूल में निहित थी स्त्री की प्रेरणा और उनकी कविता शक्ति में प्रवाहित था प्राप्त स्फूर्ति का संजीवनी रस। वह पति सुखी है जिसे अच्छी पत्नी मिली है और वह पत्नी सुखी है जिसे अच्छा पति। यहाँ अच्छे का अर्थ मन के मिलन से ही हो सकता है। मेरी दृष्टि में वह विवाह, विवाह ही नहीं है जहाँ एक दूसरे का मकट्य एक दूसरे की भिन्नता को भूल न गया हो जहाँ प्रेम रस की सरिता प्रवाहित न होती हो ऐसे विवाह मात्र परम्परा से विवाह कहला सकते हैं वास्तविकता से नहीं।

अपने बच्चों को अल्प आयु में ही जबकि वे यौन विषय को ही नहीं जानते विवाह की आवश्यकता एवं जिम्मेदारियों से अनभिज्ञ होते हैं प्रेम जिनके लिए मन्द का विषय ही होता है भावना का नहीं विवाह रूपी सूत्र में बांधकर जीवन प्रवाह में धकेल दिये जाते हैं। विवाह का यह क्रम संतान को महासागर के भंवर में डालने से कम बलात्कार नहीं है।

स्वार्थ से प्रभावित समाज में एक स्वस्थ सुन्दर शिक्षित, सभ्य युवक का विवाह होता है एक अस्वस्थ अशिक्षित असभ्य एवं असुन्दर स्त्री के साथ। एवं नव यौवना सुन्दर शिक्षित स्वस्थ सभ्य कन्या की बूढ़े अथवा कुरूप अशिक्षित तथा अस्वस्थ युवक के साथ। ऐसा मात्र बड़ों की इच्छा से ही नहीं स्वयं युवक युवतियों की इच्छा से भी होता है, अर्थ के चक्कर में वे भूल जाते हैं कि उससे भी अधिक कोई चीज हो सकती है ? कन्याओं को आज भी बिकते देखा गया है

अर्थ के साथ एक षोडसी एवं ढलती जवानी का वृद्ध ! एक ओर लम्बा सा जीवन ओर दूसरी ओर दरवाजे पर खड़ी मौत, एक ओर सौन्दर्य दूसरी ओर झुर्रियाँ, एक तरफ शक्ति और भावना दूसरी ओर अशक्ति और हीनता एक ओर जीवन दूसरी ओर मृत्यु ! तब कैसे एक दूसरे से जीवन साथी बन रहने की आशा की जा सकती है। सर्वगुणा काञ्चनमाश्रयन्ती ? अर्थ को प्राथमिकता देकर किए गये ऐसे विवाहों में नारी को वैषम्य का दुःख जीवन पर्यन्त सहना पड़ता है। ऐसी स्त्रियों के लिए विवाह कहते हैं एक ऐसी हँसी को जिसमें रोना छिपा हो।

समाज में विधवाओं की जो स्थिति है वह दुःख का विषय ही है। उन्हें अपने प्राणधन के वियोग का दुःख तो होता ही है साथ ही कुछ ऐसी रूढ़ियों को अदा करना पड़ता है जो जले पर नमक लगाने का काम करती हैं। कहीं उसे घर की चार दीवारी में बन्द आभूषणों से रहित काले अथवा श्वेत वस्त्रों मे मर्यादित अनेक कठोर नियम जिनकी कटुता को वे भुक्तभोगी बहिनें ही जानती हैं। भारत में आज अनेकों बालविधवाएं होंगी जिनकी स्थिति पर समाज को तरस आना चाहिए, बावजूद इसके पुनर्विवाह को बुरा माना जाता है, अपनी कुछ धार्मिक तथा सामाजिक धारणाओं के आधार पर। समाज के इस क्रूर नियम के आगे अनेकों कलियाँ खिलने से पहले ही मुरझाने को विवश की जाती हैं और आशा की जाती है कि वे सदाचारपूर्वक अपना जीवन बिताएँ—यह भी आज के विषम-वातावरण में, विचारों की यह विडम्बना ही है।

वसुन्धरा की तरह नारी की सहन शक्ति भी गहन है। समाज के कायदों का आदर करना अपना कर्तव्य समझ कर शेष जीवन आँसू बहा कर भी बिता सकती है। प्राचीन समय की दुहाई, पुरखों का आदर्श, मर्यादा की दुहाई देकर उसके अधिकारों को हथियाना मजबूर करना समाज के कुचक्र का कठोर विधान ही कहा जाएगा।

विवाह का लक्ष्य मात्र शारीरिक मिलन रह गया है। समाज चाहता है युवक के लिए युवती एवं युवती के लिए युवक ताकि उनका परिवार चल सके और ऐसा ही हो रहा है। एक दूसरे के न चाहने पर भी अनायास बच्चे हो जाते हैं। *मैं यह नहीं कहता कि समग्र समाज* ऐसा ही चाहता है, आज काफी चिन्तन जागृत हो रहा है एवं पुरानी मान्यताओं का स्थान नवीन मान्यताएं ले रही हैं। कुछ अभिभावक जो अभी तक उसी रेखा पर चल रहे हैं—उसमें निहित है परम्परा से चली आ रही उनकी मान्यता। अभिभावक घराना, जाति एवं धन को महत्व देते हैं तो युवक विचारों की साम्यता को। उम्र के साथ निरीक्षण एवं जीवन के मूल्यांकन में अन्तर आ जाता है। बुजुर्गों का सामाजिक जीवन युवा-वर्ग के सामाजिक जीवन से भिन्न होता है, वे पारलौकिक विषयों का चिंतन करते हैं एवं युवा लौकिक विषयों का। दृष्टि-भेद के कारण न चाहने पर भी अहित हो ही जाता है। कुछ ये कारण बनते हैं, कुछ मित्र वर्ग एवं निकट के रिश्तेदारों का दबाव। मन्थन खत्म हो जाता है और इस तरह युवक युवतियां बाध्य किए जाते हैं *इज्जत के नाम पर विवाह के पवित्र बन्धन को बदनाम करने के लिए!* कुछ भी हो इस मनमानी का दुष्परिणाम जीवन को आशा से निराशा में बदल देता है।

समाज की सबसे विषम समस्या है अनमेल विवाह, *जिसका कोई* निदान नहीं, और जिसका निदान भी एक समस्या छोड़ जाता है एक का उपचार दूसरी बीमारी का हेतु बनता है। अनमेल विवाह के कारण जीवन विषम बना रहता है, यदि तलाक लिया जाय या दिया जाय तो समस्या उनके पुनर्विवाह की बनती है, फिर तलाक भी तो एक समस्या ही है। अक्सर परेशान होकर भी लोग तलाक नहीं ले पाते क्षुद्र सामाजिक मर्यादाएं, बंधन काम करते हैं, परिणाम जीवन भर का संघर्ष वैमनस्य और असमाधान बन कर रह जाता है। विचार

नहीं मिलते, प्रेम नहीं रहता, आये दिन झगड़े होते है, कलह होता है, वैमनस्य बढ़ता है। सम्पूर्ण जीवन दोनों के लिए एक ऐसी समस्या बन कर रह जाता है जिसका कोई हल नहीं।

एक दूसरे की उपेक्षा म कदम बहक जाने की सम्भावनाए सदा बनी रहती है। जीवन से ऊब कर पलायनवाद की ओर झुकते है, जीवन से विरक्ति सी होने लगती है। इस तरह दो प्राणियों का जीवन तो नष्ट होता ही है इससे समाज में दूषित वातावरण का निर्माण भी होता है एव राष्ट्र की युवा-शक्तियों का अपव्यय होता है। घुटन पूर्ण जीवन मे एव निमाण स विरक्ति में। बहुधा इस तरह से दुखी व्यक्तियों को शराब आदि व्यसनों म भी व्यस्त देखा गया है। ऐसी स्थितियों में समाज उनके दोष मात्र ढूढता है, भूल जाता है कि विवशता भी तो कोई चीज है मनुष्य हृदय युक्त प्राणी है, पत्थर की मौन प्रतिमा नहीं।

दिल की दूरी चाहने न चाहने पर भी मानसिक तलाक बन जाता है। यदि समय रहते बुजुर्ग वर्ग समाज सजग न रहा तो यह मानसिक तलाक वास्तविक 'तलाक' में बदल जायेगा। तलाक पति-पत्नि की विवशता एवं सिसकती हुई भावनाए हैं। उसे गलत और अपमान जनक मानते हुए भी परिस्थितियों से तंग आकर वे सब कर बैठते हैं जो समाज की दृष्टि में घृणित होता है। समाज की परम्पराए एवं परम्परा से चले आ रहे रूढ़ विचार मजबूर करना चाहते हैं विवशता-पूर्ण जिन्दगी जीने के लिए, इन विचारों को ढू सने के लिए, कि—यही स्वर्गीय आनन्द है कर्तव्य है जो उसे प्राप्य है और वह समाज की ऐसी मान्यताओं की कद में बन्दी हो जाता है जिसके स्वतन्त्र होने के सब दरवाजे बन्द हो चुके हों वह अपने इस कैदी जीवन पर रो पड़ता है, आंसू उसके दैनिक जीवन का अनिवार्य क्रम बन जाते हैं एवं अंतत एक ऐसा अवसर आता है जब उसकी आंखों के आंसू सूख जाते हैं,

तब उसकी आंखों में आंसू नहीं खून उतर आता है और विवश होकर समाज के इस कुकृत्य को घृणा की नजरों से ही नहीं देखता अपितु समाज के प्रति कटु बन जाता है और मुड़ जाता है उस ओर जहां मयखाने हैं, मधुशाला है और समाज कहता है उसका रास्ता ठीक नहीं है यह बिगड़ गया है।'

एक दूसरे के लिए घुटन बनकर जीने से नित्य के झगड़ों से समाज के वातावरण को दूषित करने से, स्व-निर्माण राष्ट्र-निर्माण के कार्यों से पलायन की अपेक्षा अच्छा होगा, 'तलाक या 'पुनर्विवाह'। यदि हम चाहते हैं कि हमारा समाज तलाक से बचा रहे तो हमें तदनुरूप विषयों से गाफिल न रहना होगा। यदि यही क्रम चलता रहा तो एक ऐसा भी समय आ सकता है जब आनेवाला समाज विवाह के नाम से ही घबराने लगेगा। कहीं ऐसा न हो समाज की वैवाहिक व्यवस्था ही लड़खड़ा जाय !

लड़के-लड़कियों के मिलन में जो भारतीय मान्यताएं या सामाजिक कटु बन्धन एवं दृष्टि रही है वह प्रकारांतर से काम-भावनाओं के गलत विकास की ही हेतु बनी है। आज विदेशों में एक युवती अकेली मीलों दूर जा सकती है वहीं आज भारतीय ललना को अकेले घर से बाहर निकलने में भी संकोच होता है। सड़कों से जब वह गुजरती है तो अनेकों छिपी दृष्टियां, ताने, सीटियां उसे लक्षित करना चाहती हैं यह इसलिए होता है कि वे अपनी मर्यादित सीमा में भी एक दूसरे से बात नहीं कर सकतीं। कुछ आपस में मिलते भी हैं तो समाज की नजरों से बचकर प्रेम करते हैं किन्तु विवाह के बन्धन में बंध नहीं सकते, यही समाज की मर्यादा है। समाज के इस तरह के बन्धनों को ढीला करना होगा किन्तु उसके साथ ही अपेक्षा इस बात की भी रहेगी कि युवा पीढ़ी को सुशिक्षित किया जाय, उनका लक्ष्य शारीरिक सुख नहीं प्रेम हो सौहार्द हो, स्नेह हो, और इसके लिए काम शिक्षा एवं आध्यात्म को भी शिक्षा का आवश्यक अंग बनाना होगा।

विवाह से सम्बन्धित कुछ और परम्पराएं भी हैं जो इस व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर सकती हैं, पर्दा प्रथा दहेज अतिव्यय वर्ण-व्यवस्था, अधिक संतान आदि।

विवाह में अभिभावक अपनी पुत्री को स्वेच्छा से जो कुछ दें साधारण भाषा में वही 'दहेज' कहलाता है। जैन आगमों में इसे ही 'प्रीतिदान' कहा है। प्रेम से, स्वेच्छा से अपनी ही संतान को अपने सामर्थ्य के अनुसार कुछ देना बुरा नहीं कहा जा सकता। आज आदर्श के नाम पर दहेज के पूर्ण रोक की आवाज लगाई जाती है, इससे पिता पुत्री के प्रति अपने कर्तव्य से वंचित रह जाएंगे। भारतीय परम्परा के अनुसार पिता की सम्पत्ति पुत्रों को ही मिलती है। वह अधिकार से ही नहीं प्रेम से ही। यदि इस प्रेम पर भी समाज का अंकुश लगाया जाय तो एक नई समस्या ही खड़ी हो सकती है। अर्थ का संग्रह हो सकता है वितरण नहीं। जो स्वयं एक राष्ट्रीय समस्या ही है।

यदि दहेज बुरा है तो अपने विकृत रूप में। प्रेम और सुख सुविधा का स्थान जब अनिवार्यता और जोर-जबरदस्ती ले ले। उस अवस्था में उसे बुरा कहा जा सकता है। मुख्यतः इसके दो रूप हैं, ठहराव अर्थात् मांगकर लेना तथा पुत्री पक्ष को प्रतिष्ठा के लिए देना पड़े। स्थिति यह है कि दोनों ही इच्छा के विरुद्ध किन्तु समाज के भय से करने पड़ते हैं।

अर्थशास्त्र का सिद्धान्त है, वस्तु की कमी तथा मांग के बढ़ने पर भावों में भी तेजी आती है। यह क्रूर हास्य है कि आज यही सिद्धान्त मानव-जीवन में भी लागू हो रहा है। समाज में जब लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की संख्या ज्यादा होती है याने लड़कों की मांग बढ़ती है तो सौदे का भाव तेजी पर होता है जीवन के मूल्यांकन की ये दरें घटती-बढ़ती रहती हैं कभी लड़कों का मूल्य अधिक तो कभी लड़कियों का। विवाह संस्कार एक पवित्र बन्धन न होकर लेन-देन वाला धर्मों

का बैंक बन गया है। विवाह के प्रसंग में सदा से लड़कों का पक्ष सबल और लड़कियों का दुर्बल माना जाता रहा है और इसीलिए विवाह विवाह न रहकर कन्या पक्ष के शोषण का प्रबलतम साधन बन गया है। गरीब परिवारों की सुन्दर, सुशील, शिक्षित और सीधी लड़कियों के साथ प्रायः अन्याय होते देखा गया है। पैसे के अभाव में वे बेमेल-विवाह के लिए मजबूर की जाती हैं, वर्ण व्यवस्था की मर्यादाओं में बँधा पिता कन्या के लिए उपयुक्त वर नहीं पा सकता। अपनी प्रतिष्ठा के लिए जब एक गरीब पिता अपनी कन्या का हाथ एक अयोग्य वर के हाथ में देता है—तब उसका दिल आत्मग्लानि से भर उठता है, पर वह चिल्ला चिल्ला कर इस अन्याय के विरुद्ध आवाज नहीं उठा सकता, क्योंकि उसके इर्द गिर्द घिनौनी परिस्थितियों का एक ऐसा जाल बुना गया है जिनसे मुक्ति पाने के लिए उसे दुबारा जन्म लेना होगा। न जाने क्यों ? आज जन-जीवन में अर्थ का प्रभाव बढ़ गया है, जीवन के मूल्यांकन का आधार तथा विवाह के लिए व्यक्ति की योग्यताओं का मापदण्ड पैसा बन गया है। हमारी प्राचीन-संस्कृति और संस्कार नाम मात्र के रह गए हैं समाज में प्रतिष्ठा है तो उनके विकृत रूप की। मनुष्य बुद्धिजीवी के स्थान पर अर्थजीवी बन गया है, और इसी अर्थ वाद की निरंकुशता ने दहेज को समस्या बनाकर प्रस्तुत किया है।

समाज की झूठी मर्यादाओं के बन्धन में पिता न तो अपनी पुत्री को कुमारी ही रख सकता है, न अपनी जाति से बाहर के व्यक्ति से शादी कर सकता है और न दहेज दिए बिना अपनी ही जाति में योग्य वर पा सकता है। अयोग्य वर के हाथ अपनी पुत्री को सौंपना न तो उसे पसन्द होता है और ऐसा कर वह समाज की निन्दा का विषय भी बन जाता है। परिस्थितियों का ऐसा चक्रव्यूह उसके चारों ओर होता है जिससे निकलना साधारण कार्य नहीं। ऐसी विषम-परिस्थितियों में उसके लिए क्या मार्ग हो सकता है ? यह समाज के चिंतकों के विचार का विषय है।

समाज के झूठे बन्धनों की चिंता किए बिना जहां दोनों हाथ निंदा ही है परिस्थितियों एवं विवशता के प्रति सहानुभूति नहीं। व्यक्ति को इनसे ऊपर उठने की अपेक्षा है। *कन्या को सुशिक्षित किया जाय,* योग्य शिक्षित अन्तर्जातीय वर पाने का प्रयास किया जाय तो सफलता मिल सकती है। वर्ण व्यवस्था की झूठी शान, मर्यादा से मुक्त होने की अपेक्षा है अपना, अपनी सन्तान का सुख विवेक के साथ अवश्य सोचना चाहिए। झूठे आदर्शों के पीछे भागना अशांति का हेतु ही बनता है। जाति के आधार पर कोई बड़ा नहीं हो सकता और न कोई छोटा।

Alexander von ने कहा—'*There are no inferior races, all are destined equally to attain freedom*'

इस धरती पर हम सब मानव बन कर आए हैं और यही हमारी जाति हो सकती है। जाति के आधार पर भेद दृष्टि रखना इन्सानियत के टुकड़े कर देना है। महात्मा गान्धी के इस भेद के विरुद्ध किए गए कठोर परिश्रम के बाद आज मानव ने कानून की दृष्टि में सबको समान बना दिया है, इतना ही नहीं स्टेज पर बोला जाता है तो इसी भावना की पुष्टि करते हुए, सुख-सुविधा के साधन भी समान रूप से उपलब्ध हैं, किन्तु आज भी उस भेदरेखा को पूर्णतः मिटा न सकी है–यदि ऐसा हुआ होता—तो अन्तर्जातीय विवाह घृणा की दृष्टि से नहीं देखे जाते एक जाति का दूसरी जाति के साथ मिलन चर्चा का विषय नहीं बनता और तो और शूद्र जैसे शब्दों का प्रयोग अवश्य बन्द हो जाता। किन्तु इसके लिए जो कुछ किया जा रहा है, वह प्रकारान्तर से विभेद रेखा को बढ़ाने का ही एक उपक्रम है। भाषा जाति धर्म धन, रंग आदि की दृष्टि से भेद कर मानव मानव की दूरी बढ़ाना सम्पूर्ण मानवता के साथ एक धोखा है। इस भेद रेखा को पाटने के लिए आज आचरण की अपेक्षा है, उपदेश की नहीं। सामाजिक चेतना आवश्यक है।

धनी निर्धन की उपेक्षा करे, निर्धन धनी से ईर्ष्या करे मालिक-मजदूर का शोषण करे या मजदूर मालिक से अनावश्यक अनुचित लाभ उठाने का प्रयास करे धन के आधार पर ऊंच-नीच का भेद—स्वस्थ समाज का लक्षण नहीं हो सकता। शारीरिक-स्वस्थता के साथ मानसिक-शांति भी सुख का आधार है। अस्तु किसी को हेय नहीं समझा जाय यह आज की अनिवार्य आवश्यकता है। गृह-कलह समाज संघर्ष जैसे विषमों से समाज को सुरक्षित रखा जा सके तो यह एक प्रगति-मूलक कदम ही होगा। पुरुष-समाज स्त्री-समाज को हीन भावसे न देखे एवं स्त्री-समाज न अपने आपको पुरुषों से श्रेष्ठ समझे। दोनों का अपना महत्व है, मर्यादा है मार्ग है।

सदियों से नारी समाज पर पुरुष वर्ग का दबाव-पूर्ण शासन रहा है और परिणामस्वरूप नारी विकास पर पर्दा पड़ता गया। नारी व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के बिना पुरुष का व्यक्तित्व भी अधूरा है। Robert G Ingersoll ने लेकर में लिखा था 'There will never be a *generation of great men until there has been a* generation of free women-of free mothers. नारी समाज में प्रचलित 'पर्दा' घूंघट उसके विकास-पूर्ण कदमों पर एक कुठाराघात ही है जिसे नारी के शील, सतीत्व और लज्जा के लिए आवश्यक माना जाता रहा है। यदि पर्दे की उपयोगिता इतनी अधिक है तो वे पर्दे की अनन्यतम उपासक बहिनें घर की देहलीज के बाहर पर रखते ही क्यों घूंघट को हटा देती हैं ? निकट के रिश्तों से तो पर्दा किया जाता है पर घर के बाहर एवं भीतर अपरिचितों से घूंघट नहीं किया जाता और फिर घूंघट की झीनी दिवार क्या भावनाओं के तूफान को रोकेगी ? भारतीय नारी को अपने सतीत्व, अपने विचारों पर निज का विश्वास होना चाहिए। वस्तुत पर्दा परम्परा की पुष्टि मात्र है और कुछ नहीं। यहां मैं एक बात और कहूं जो बहिनें प्रारम्भ से

पर्दे का प्रयोग करती आ रही हैं उन्हें पर्दा छोड़ते वक्त विवेक एवं अन्य विषयों से भी गाफिल न रहना चाहिए।

घूंघट ही नहीं और भी अनेक बातें परम्परा से चलती आ रही हैं। आज जहां राष्ट्र हित मे सतति निरोध की बात कही जाती है, वहीं जनता आज भी इस घम के विरुद्ध मानती है। अत सतति निरोध के अनेक साधन होने पर भी जनसंख्या की वृद्धि तेजी से हो रही है। यह शायद उस देश का धर्म हो सकता है जहां की जनसंख्या कम हो जो देश आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हो किन्तु हमारे देश के लिए अधिक बच्चे और उनकी व्यवस्था न कर पाना निश्चित ही अधर्म का विषय कहा जा सकता है। इस प्रसंग में कुछ लोग इसलिए भी निरोध से घबराते हैं कि एक समाज ने एक पक्ष ने इसे अपनाया है वहीं दूसरा पक्ष या जाति इसे धर्म के विरुद्ध मानता है और प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष जनता यह अनुभव करती है कि एक समय आ सकता है जब अल्पसख्यक बहु संख्यक बन जायें। अस्तु इसके लिए समग्र भारतीय समाज को अपनाने की आवश्यकता है, जाति-भेद धर्म भेद या उनकी मर्यादाओं से ऊपर उठकर; क्योंकि एक राष्ट्रीय का सबसे बड़ा धर्म राष्ट्र हित ही हो सकता है। एक व्यक्ति दो-तीन बच्चों से अधिक का पालन ठीक तरह से कठिनता से ही कर पाता है। यदि बच्चों का निर्माण ठीक तरह से न किया गया तो ये संतानें परिवार के लिए तो भार बनती ही हैं राष्ट्र के लिए भी। राष्ट्र-निर्माण का आवश्यक अंग है जनता की शान्ति सुख। यदि जनसख्या इसी तरह बढ़ती रही तो न तो परिवार का सुख ही सुरक्षित रह सकता है और न समाज तथा राष्ट्र का।

जब पर्याप्त रोटी, रोजी और सुख-सुविधा के साधन उपलब्ध न हो सकेंगे तो उपलब्ध साधन ही झगड़े और संघर्ष का विषय बन सकते हैं, शक्तिशाली उसे हथियाने की कोशिश करेगा और इस

तरह शक्तिशाली एवं शान्त तथा कमजोरों की भेद रेखा बढ़ती चली जायेगी। मानव फिर स्वार्थ की चरम सीमा पर पहुँच सकता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर, एक जाति दूसरी जाति पर, एक प्रान्त दूसरे प्रान्त पर और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर हावी होने का प्रयास करेगा। भय है समाज की व्यवस्थाएं एवं अनुशासन भंग होने का, देश की एकता पर आँच आने का।

अनावश्यक खर्च झूठी शान पैसे का अपव्यय दिखावा जैसी बातों पर भी समाज को विवेक से काम लेना होगा। बड़े-बड़े महभोजों में, शादियों में मृत्यु के बाद और भी अनेक अवसरों पर किया जाने वाला अपव्यय रोकना होगा। करोड़ों रुपयों की खाद्य-सामग्री प्रति वर्ष जूठन के रूप में बेकार चली जाती है। आज इन सब बातों में विवेक की अपेक्षा है। एक धनी जितना खर्च करता है एक सामान्य स्थिति के व्यक्ति को खर्च में उसकी बराबरी करने की होड़ न करनी चाहिये। आवश्यकता तो इस बात की है कि मान का बना हुआ मापदण्ड 'पैसा' व्यक्ति की प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा का प्रश्न न रहे।

इस तरह की अनेक परम्पराओं ने समाज की प्रगति को कुण्ठित किया है। कु-परम्पराओं की संक्रमक बेड़ियों की जकड़ में ही सम्पूर्ण समाज बन्दी बन गया है। उलझ गया है, सदियों से चली आ रही अंध विश्वास की शृंखला एवं झूठे आदर्शों की शान में। आशा पर निराशा, प्रकाश पर अन्धकार, शान्ति पर अशान्ति प्रगति पर रुकावट की परतें गहरी होती चली जा रही हैं। सब मौनभाव से गुबार देख रहे हैं यह सोच कर कि विधि का यही विधान है भाग्य की यही विडम्बना है, कौन परम्पराओं से बगावत करे?

किसी ने ठीक ही कहा Men commonly think according to their inclinations speak according to their learning and imbibed opinions but generally according to

custom ' कार्ल मार्क्स [Karl Marx] ने कहा—'The Tradition of all the dead generations weighs like an incubus on the brain of the living जॉन मिल्टन (John Milton) ने अपनी पुस्तक—'The tenure of king and magistrates में लिखा—'If men within themselves would be governed by reason, and not generally give up their understanding to a double tyranny, of custom from without and blind affections within they would discern better what it is to favour and uphold the tyrant of a nation Being salves within doors no wonder that they strive so much to have the public state conformably governed to the inward vicious rule by which they govern themselves

मानव-जीवन के इर्द गिर्द परिस्थितियों और मान्यताओं का घेरा तेजी से घूम रहा है कल एवं आज में अन्तर आ चुका है। सोलहवीं सदी की आवश्यकताएं आज बिना परिवर्तन के उसी तरह अपनाए रखना—मानसिक दासता का विषय हो सकता है, तर्क एवं बुद्धि का विषय नहीं। हां यह निश्चित है कि मानव जिस तरह इस मानसिक दासता के दल दल में फंसा हुआ है—संयुक्त श्रम साहस एव व्यावहारिक आचार चेतना में क्रांति ही उसे नई दिशाएं दे सकती हैं। कठिनता हो सकती है संघर्ष करना पड़ सकता है क्योंकि मार्ग कंटीला है जाल को काटना है। विलियम ब्रेड फोर्ड [William Bradford) के शब्दों में— All great and honorable actions are accompanied with gread difficulties and must be both enterprised and overcome with answerable courages The dangers were great but not desprrate the difficulties were many but not invincible

युग की परिस्थिति व व्यक्ति के वातावरण के अनुसार मान्यताओं में,

परम्पराओं में परिवर्तन अवश्यम्भावी है, यदि एसा न किया गया तो प्रकृति के अटूट नियम उसे मजबूर कर देंगे, शृंखलाओं को छिन्न-भिन्न करने के लिए ! आज प्राचीन एवं नवीन के बीच समन्वय की आवश्यकता है। समाज को दोनों के बीच का एक रास्ता निकालना ही होगा—अपनी संस्कृति की सुरक्षा एवं विकास के लिए और यह सम्भव है समुचित शिक्षा से !

शिक्षा ही व्यक्ति का सुव्यवस्थित व्यक्तित्व जीवन की अनिवार्यता परिवार की आवश्यकता, समाज की प्रतिष्ठा और राष्ट्र का गौरव है ! एक व्यक्ति का व्यक्तित्व सम्पत्ति से नहीं, रूप एवं पूर्वजों से प्राप्त प्रतिष्ठा से नहीं शिक्षा के निखार से बनता है। शिक्षित ही प्राप्त साधनों को समुचित रूप से व्यवस्थित रख सकता है, अप्राप्य साधनों को जुटा सकता है। शिक्षा राष्ट्रीय सम्पत्ति, गौरव संस्कृति, प्रतिष्ठा की निर्माता के साथ रक्षक भी है। शिक्षा भूत का प्रमाण, वर्तमान का यथार्थ एवं भविष्य की सुखद कल्पना है। संक्षेप में कहें तो शिक्षा, जीवन की पूर्णता है। जोमे डेव [John Dewoy] के विचारों से शिक्षा स्वयं में जीवन है ! मार्टिन लूथर [Martin Luther] के शब्दों में 'The prosperity of a country depends not on the abundance of its revenues nor on the strength of its fortifications, nor on the beauty of its public buildings, but it consists in the number of its cultivated citizens in its men of education enlightenment and character तथा ऐडिसन [Addison] के शब्दों में शिक्षा 'What sculpture is to a piece of marble education is to the soul'

स्वस्थ, सफल सुखद सर्वांगपूर्ण जीवन के लिए शिक्षा एक साधन है और इसी महत्व को आंकते हुए सदियों से भारत में शिक्षा के विषय को प्राथमिकता दी जाती रही और यही कारण था भारत

के विश्वगुरु-पद पाने का, गौरवमय अतीत का, सुखद राम राज्य का। सच्चे अर्थों में राजा नायक व्यापारी सदाचारी क्षत्रिय रक्षक, शिक्षक निर्माता कर्मचारी सेवक होता था। व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक पक्ष ही सबल नहीं था, अपितु व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हुआ था। एक व्यक्ति जहाँ युद्ध कला में दक्ष था, वहीं उसे शांति का विवेक भी था एक राजनायक अपने वैभव म जहाँ मस्त था वहीं जनता का सुख भी उसके चिंतन का विषय होता था जनता में अपनी निजी आवश्यकता एवं सुख-साधन जुटाने की जहाँ प्रवृत्ति थी वहीं परमार्थ सेवा धर्म जीवन की अप्राकृतिक आडम्बरपूर्ण प्रवृत्ति न होकर सहजवृत्ति थी। जनता को अपने नायकों पर गर्व था एव नायकों को जनता पर गरीबों को अमीरों की सहृदयता पर गर्व था और अमीरों को गरीबों की सेवा एवं निस्वार्थ वृति पर जाति व्यवस्था का क्रम थी, अस्पृश्यता का विषय नहीं, साम्प्रदायिकता एक ही मजिल तक पहुँचने के भिन्न-भिन्न वैचारिक क्रम थ किन्तु खण्डन-मण्डन का मार्ग नहीं, परम्पराएं सरल लचीली, आवश्यकता का विषय थी अनिवार्य आग्रह का विषय नहीं। सिद्धान्त विवेक का विषय था, शिक्षा सही अर्थों में शिक्षा थी।

किन्तु पिछले तीन सौ वर्षों की परतन्त्रता ने, शिक्षा का ढाँचा ही बदल दिया। शिक्षा से आत्मा निकल गई, शरीर बच गया। शिक्षा परिवर्तन के साथ शिक्षा तो बनी रही, परन्तु सही शिक्षा नहीं। कटु शब्दों में कहूँ तो 'शिक्षा' भी एक परम्परा बन गई उसके साथ जो विवेक था वह खो गया। तर्क बढ़ा चिंतन बढ़ा किन्तु वह स्वतंत्र नहीं रह सका। उस पर गुलामी का कोहरा छा गया। शिक्षित जाग्रत समुदाय को नियंत्रित करने की अपेक्षा अशिक्षित जनता पर शासन करना आसान था, अत जनता को अशिक्षित रखने का षडयंत्र किया गया या सहज ही जनता को सुशिक्षित करने की उनको आवश्यकता न थी। यत्र-तत्र शिक्षा का क्रम था भी तो वह भारतीय न रहकर

विदेशी क्रम था। आज स्वतंत्रता प्राप्त किए २२ वर्ष हो चुके हैं किन्तु शिक्षा का क्रम आज भी वही है, उसे भारतीय रंग संस्कृति की आवश्यकता से अनुप्राणित करने की आवश्यकता है। किन्तु शिक्षा परम्परा के साथ विद्रोह करने का आत्म विश्वास शिक्षितों में भी नहीं रहा। विनोबाजी ने कहा था—'स्वतन्त्रता के बाद हमने अपना निजी संविधान बनाया हमारा निजी राष्ट्रगान एवं राष्ट्रध्वज है, क्या हमारी निजी शिक्षा पद्धति नहीं हो सकती? यह एक चिंतन का विषय है, विवेक की अपेक्षा है। धर्म एवं शिक्षा जैसे विषय भी यदि परम्परा की कैद में बन्दी बन गए उन्मुक्त चिंतन, वातावरण एवं आवश्यकता के विवेक से भी गए तो कथित शिक्षा के विकास के बावजूद भी राष्ट्र निर्माण एक स्वप्न ही होगा।

क्या? क्यों? कैसे? के उत्तर में ही शिक्षा का रहस्य छिपा है शिक्षा का कार्य है व्यक्ति में विषय को जानने और सीखने की इच्छा को जागृत करना। शिक्षा अर्थात् मनुष्य जीवन का सर्वांगीण विकास सत्य की खोज जीवन का परिचय एवं सन्तुलित जीवन जीने का एक राज-मार्ग! वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य को मनुष्यत्व प्रदान कर सके, उसकी सुप्त-शक्तियों का सुनियोजित विकास कर उसके सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक जीवन में सक्रियता के साथ भाग लेने की प्रेरणा प्रदान कर सके व्यक्ति को कर्तव्यपरायण, स्वस्थ उद्योगी कार्य कुशल, विवेकी, चिन्तनशील बना सके, राष्ट्रीय संस्कृति एवं सभ्यता, कला एवं साहित्य को जीवन का अंग बना सके देश के गौरव को बढ़ा सके किन्तु कहते हुए दुख होता है कि कथित शिक्षा यह सब न कर सकी। एक ओर शिक्षितों के समाज को विकसित समाज कहा जाता है दूसरी ओर वे ही शिक्षितजन अपने विगत के इतिहास के महत्वपूर्ण अध्यायों को भूलकर अपनी शक्ति देश के सही विकास में नियोजित न कर निजी स्वार्थ में व्यवहृत कर

रहे हैं। शिक्षा प्राप्त कर पाश्चात्य संस्कृति के प्रवाह में अपने अस्तित्व और संस्कृति को ही भूल जाय तन से देशी होकर मन से विदेशी बन जाय तो निर्माण कैसा। और तो और आज के अधिकतर शिक्षितों के जीवन को देख कर लगता है शिक्षा दूसरों पर आश्रित रहना सिखा रही है। मिथ्या आवश्यकताओं के संकीर्ण दायरों में रहना सिखा रही है? कृषक खेती से दूर हटकर, कलाकार कला की मौलिकता का त्याग कर, मजदूर अपने कार्य क्षेत्र को छोड़कर, फशन एवं खर्चों की तरफ झुक अगर होटलों महफिलों और मनोरंजनघरों में भटके सीमित आवश्यकताओं को सीमा रहित बनाकर जिए, आमदनी कम खर्चा अधिक का जीवन बीता रहे सादगी से फशन की ओर बड़े सन्तोष से असन्तोष के परिप्रेक्ष्य की ओर का यह जीवन जो उसे शिक्षा के बाद मिले किसी भी दृष्टि पर शिक्षा का अंतिम पुरस्कार नहीं कहा जा सकता है पर स्थिति यही है कि जो हाथ जो मस्तिष्क जो शक्ति शिक्षा के बाद प्राप्त साधनों के विकास एवं निर्माण में लगने चाहिए वह इस तरह आत्मा से दिग्भ्रम हो मात्र कंकाल रह जाय यह दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है? अच्छा तो यह होता कि शिक्षा के बाद वह कृषि-विकास में योग देता श्रमिक अच्छे ढंग से श्रम करता कलाकार कला की उपासना करता, उपलब्ध साधनों का उपयोग कर उसी क्षेत्र में नए प्रयोग करता। मानव अच्छा मानव बनता। यदि ऐसा होता तो 'शिक्षा' शिक्षा ही रहती, कथित एवं वास्तविक शिक्षा की भेद-रेखा में बँटती नहीं।

पंजाब विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण करते हुए १९ दिसम्बर १९५३ को डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था 'The importance of education is not only in knowledge and skill but it is to help us to live with others' यूनेस्को धमरस कॉन्फ्रेंस में अपने विचार रखते हुए उन्होंने कहा—'No

education can be regarded as complete if it neglects the heart and the spirit'

आधुनिक शिक्षा के विषय में उन्होंने एक जगह लिखा—'Education becomes an instrument for training docile passive obedient servants of a bureaucracy ready to accept whatever is handed out from philosophy to aspirin tablets. This tyranny is more crushing and demoralizing than any political or religious despotism It destroys the root of all aspiration and freedom

दोष शिक्षा का नहीं, शिक्षा पद्धति का है—इसी सन्दर्भ में १७ सेप्टेम्बर १९५२ को अखिल भारतीय पत्रकार सम्मेलन के अवसर पर पं जवाहरलाल नेहरू ने कहा था— I am sometimes a little frightened by the type of education that is given and the results that it produces.'

पण्डित मदनमोहन मालवीय के शब्दों में हमारी शिक्षा उद्देश्य रहित आध्यात्मिकता विहीन असैद्धान्तिक, तथा बिना आधार की शिक्षा है।

इसी बात की पुष्टि करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा 'Our education has no aim nor does it incorporate any spiritual or ethical contribution to the greatness of humanity

इसी बात का समर्थन डा॰ राजेन्द्र प्रसाद ने भी किया— At present I find that the educational system creates a spirit of separatism and snobbishness

इसीलिए उन्होंने बनारस में भाषण करते हुए कहा—'I feel that the time has come when a certain reorientation of

our whole scheme of education has to be considerd and attempted

शिक्षण संस्थान, शिक्षा के केन्द्र मानव निर्माणक केन्द्र न रहकर व्यापारिक संस्थान बन गए हैं अध्यापक को अपनी तनख्वाह से मतलब है एवं विद्यार्थी को उसके अनुरूप पाठों से। विद्यार्थी एवं अध्यापक का जो निकट सम्पर्क बनना चाहिए वह बन ही नहीं पाता। प्राचीन समय म (गुरुकुल पद्धति काल में) विद्यालयों को तीर्थ-स्थान समझा जाता था। अध्यापक गुरु का विद्यार्थी शिष्य के साथ निकट का सम्बन्ध होता था गुरु शिष्य की गतिविधि, रुचि, प्रगति से अनभिज्ञ न होता था, शिक्षा का क्षेत्र शहरी वातावरण से दूर शांत आश्रम होते थे शिक्षा जीवन के लक्ष्य को लेकर चलती थी और यही कारण था भारत के जगत गुरु बने रहने का शिक्षा के क्षेत्र में विश्व के मार्ग दर्शक का।

किन्तु आज शिक्षा का अर्थ पुस्तकीय ज्ञान बन चुका है रट रटा कर सबसे अधिक अंक पाने वाला विद्यार्थी सबसे श्रेष्ठ योग्यता का विद्यार्थी आंका जाता है। मानसिक विकास, चिंतन अवश्य हुआ है किन्तु ज्ञान सृजनात्मक रूप न ले सका है। आज अनुकरण का पाठ ही अधिक पढाया जाता है। व्यक्ति अनुकरण किए चला जा रहा है यह भूलकर कि उसका लक्ष्य क्या है? जीवन का बहुमूल्य समय एव शक्ति अनावश्यक बिना उद्देश्य की शिक्षा में लगाने के बाद भी जब वह अपनी सीमित आवश्यकता—नौकरी को भी प्राप्त नहीं कर पाता, आजीविका भी जब समस्या बन जाती है तब उसे महसूस होता है, उसका समय व्यर्थ हो चला गया। २५ वर्ष तक की शिक्षा के बाद भी यदि व्यक्ति मानवता न पा सका, स्वावलम्बी न बन सका तो फिर उसने क्या पाया शिक्षा से? मात्र कागजी ज्ञान चिंता, एवं तर्क, अप्राकृतिक जीवन दिखावा एव आडम्बर। क्या यही उसे २५ वर्षों क

श्रम का पुरस्कार मिला ? क्या राष्ट्र का बहुमूल्य समय, सम्पत्ति एवं शक्ति अनावश्यक खर्च नहीं किया जा रहा है ? काश ! जीवन के इन महत्वपूर्ण वर्षों का समुचित उपयोग किया जाता !

डाक्टरी शिक्षा इन्जिनियरी-शिक्षा निर्माणक हो सकती है, किन्तु इसके लिए भी जो इतने अधिक वर्ष लगाए जाते हैं उसमें कटौती की जा सकती है। जिन्हें कृषि करना है उनके लिए कृषि सम्बन्धी शिक्षा की अपेक्षा है, जिन्हें कलाकार बनना है उन्हें उससे सम्बन्धित शिक्षा की अपेक्षा है। प्रारम्भिक ४ से ८ वर्ष साधारण अक्षर ज्ञान भाषा, एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा पर लगे, ८ से १२ वर्ष की अवधि में व्यक्ति को साधारण ज्ञान, आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो एवं १२ के बाद का समय अपने अपने लक्ष्य क्षेत्र की शिक्षा में लगे। १२ वर्ष की अवधि तक जो शिक्षा उन्हें दी जाय उसमें उन्हें सांसारिक ज्ञान हो, उनमें अच्छे आध्यात्मिक संस्कार बनें राष्ट्रीय सेवा भाव की प्रेरणा मिले बुराइयों से विमुख रहकर निर्माण, कर्म कार्य-क्षमता का विकास किया जाय, उनमें ज्ञान प्राप्ति के प्रति जिज्ञासा की वृत्ति को जागृत किया जाय, उसके बाद के समय में वे अपने कार्य भविष्य जीवन के लक्ष्य की ओर दक्षता प्राप्त करने में जुटे एवं प्राप्त साहित्य आदि स ज्ञान का विकास करते चले जाय। यही क्रम अन्तिम सत्य नहीं। तत् सम्बन्धी चिंतन की अपेक्षा है एवं महात्मा गांधी के विचारानुसार शिक्षा को उपयोग का विषय बनाने की अपेक्षा है।

उच्चतर शिक्षा, कला अनुसंधान के क्षेत्र में योग्य विद्यार्थियों को स्थान दिया जाय जो उस क्षेत्र मे आगे भी बढ़ सके वर्ना आज शिक्षा एवं उससे प्राप्त डिग्रियाँ ही यदि जीवन का लक्ष्य बन गया तो वह एक फैशन-मात्र हो जायगा और इस फैशन के चक्कर में राष्ट्रीय समय सम्पत्ति का दुरुपयोग ही होगा।

आज जो कुछ प्राप्त हो रहा है वह पुस्तकीय कागजी ज्ञान मात्र है, व्यावहारिक जीवन में उसका उतना समुचित उपयोग नहीं हो

पाता । एक व्यक्ति गणित क प्रश्न का हल कर सकेगा, साइ स के फार्मूले उसे याद होंगे, राम कृष्ण शेक्सपीयर, कालीदास का जीवन उन्हें याद हो सकता है किन्तु जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं में उलझ आएँगे चार व्यक्तियों के बीच किस तरह का बर्ताव हो, माँ की ममता क्या हो सकती है, किस तरह का जीवन जीया जाना चाहिए ? इन बातों स अनभिज्ञ ही रहेंगे । मनुष्य मानवता के विचार, नतिकता संस्कृति, विवेक की बातें दूर ही रहेगी । कोई किताबी सिद्धान्त के पीछे वातावरण एवं परिस्थिति का महत्व तक न आंक सकेगा तो कोई पाश्चात्य प्रभाव में अपना सुख ही सब कुछ समझकर दूसरों क अहित करने म उलझ जायगा ।

शिक्षा ने यदि विवेक दिया होता शिक्षा न यदि शिक्षित बनाया होता शिक्षा ने यदि मानवता दी होती तो आज शिक्षित जाति एवं सम्प्रदाय के आग्रह का पोषक नहीं बना रहता, परम्परा एवं स्व-सिद्धान्तों को ही व्यक्ति के मूल्यांकन का आधार तत्व नहीं मानता किन्तु हो ऐसा ही रहा है । एक शिक्षित मानव मानव एकता की बात तो करेगा किन्तु तदनुरूप कार्य न कर सकेगा एव न करने वाले को ठीक ही समझ सकेगा । आज भी अन्तर्जातीय-विवाह समाज स्तर से नही देखे जाते व्यक्ति का अन्य जाति के साथ समान स्तर पर मिलन उचित नहीं समझा जाता धनी-निर्धन का प्रेम ठीक नहीं समझा जाता और यह सब हो रहा है शिक्षितों में भी । बात कुछ की जाती है व्यवहार कुछ और । एक तरफ से शिक्षा ने अप्राकृतिक जीवन जीने का मार्ग बता दिया है, व्यक्ति बड़ी-बड़ी बातें करेगा कहेगा कुछ, करेगा कुछ । आज इसी दिखावटी एव अप्राकृतिक जीवन के कारण मित्र का मित्र पर प्रेमी का प्रेमिका पर, भाई का भाई पर यहाँ तक कि प्रभुपर भी विश्वास-अविश्वास करना कठिन हो गया है ।

पंडित नेहरू ने कहा था — 'The logical inference is that

our present system of education is defective and out of this defective educational system springs the present student indiscipline which *is a sign of our national* degeneration.

आज देश के प्रत्येक भाग से विद्यार्थी आन्दोलन की बात सुनी जा सकती है। आए दिन हड़तालें, बन्द, जुलूस तोड़-फोड़ और अनेक अकृत्य कार्य किए जाते हैं। यही शिक्षितों शिक्षार्थियों का दल हिंसात्मक कृत्यों तक पर उतर आता है। आज विद्यार्थी शिक्षा से अधिक अन्य विषयों में रुचि लेता है। आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक प्रत्येक क्षेत्र में आज उसका हस्तक्षेप है। उन्हें अपनी शक्ति का नाज भी है और अहं भी। इस तरह के तोड़-फोड़ मूलक आन्दोलनों से राष्ट्र की रचनात्मक शक्ति का ह्रास ही हुआ है।

एक तरफ विद्यार्थी ने अपनी शक्ति को अनावश्यक आन्दोलनों में लगाया है दूसरी ओर उसका झुकाव पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति की ओर होता चला गया है। आज निजी भाषा, निजी पोशाक पसन्द ही नहीं की जाती बल्कि उपेक्षा का विषय भी समझी जाती है। दिखावा एवं फैशन के बढ़ते खर्च अभिभावकों के लिए परेशानी बन गई है और फिर शिक्षा के बाद जब वे आजीविका के क्षेत्र में आते हैं तब भी यह आदत जाती कहां ? दिखावे के लिए उधार ली जाती है ? झूठी शान एवं प्रतिष्ठा की धाक जमाने की धुन लगी रहती है ? सिगरेट एवं शराब भी इस फैशन दिखावे के आवश्यक अंग बन गए हैं। परिणाम होता है पारिवारिक जीवन में कलह दूसरों को दुख एवं निजी परेशानियों की वृद्धि और जब इस तरह व्यक्ति घर की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता तो गलत तरीकों को अपनाता है, रिश्वत आदि से पैसा इकट्ठा करने का क्रम प्रारम्भ करता है, यह सब चिन्तन के विषय ही हैं।

यह सब देख कर सहज ही एक जिज्ञासामय प्रश्न होता है आखिर यह सब क्यों ? मेरा विश्वास है अब तक इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रसंग में मिल ही चुका है— लक्ष्य विहीन जीवन जीने से, शिक्षा पद्धति का जीवन के साथ तास-मेल न होने से, शिक्षकों का जीवन शिक्षा के अनुरूप न होने से और स्वयं शिक्षार्थियों के दिखावे एवं फैशन की ओर झुकने से, यह दोष एक का नहीं, सम्पूर्ण वातावरण का है ।

उन बच्चों के कुण्ठा भरे भविष्य पर दुःख होता है जिन्होंने अपना २५ वर्ष का जीवन अपने जीवन निर्माण के लिए बिताया, किन्तु फिर भी [निर्माण न हो सका और जिन्हें एक बन रहे मकान में ईंटों की तरह जोड़ने का प्रयास किया गया ।

२८ फरवरी १९५० में शिक्षा विषय पर डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अन्तर विश्वविद्यालय बोर्ड बनारस के अधिवेशन म कहा था— I am often haunted by the question Is our education really intended to make our people dependent on others ? should it not make them more self reliant, better equipped to face the struggle of life and to serve not only them solves and their families but also the country at large ?'

विलियम कॉबेट ने कहा था 'तुम्हे जीने का अधिकार नहीं यदि तुम कार्य नहीं करते ।'

शास्त्रों में कहा गया है—

'उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथै
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखेमृगा'

आदमी को कार्यशील होना चाहिए, पुरुषार्थ का फल बड़ा मीठा होता है ।

उपलब्ध शिक्षा पद्धति ने मनुष्य के मस्तिष्क का विकास तो किया, किन्तु सम्पूर्ण व्यक्तित्व का नहीं। शिक्षा से बचे रहने वालों के लिए यह दलील काफी सहायक बनी जो वस्तु स्थिति का अंकन भी है। किन्तु साथ ही यह भी मानना होगा कि यह शिक्षा का नहीं शिक्षा प्रणाली का दोष हो सकता है, वातावरण का दोष होम कता है। शिक्षा जीवन में मार्गदर्शक बनती है शिक्षित द्वारा की गई भूल में सुधार भी हो सकता है। शिक्षा के साथ उच्च व्यवहार सरलता, उपयोगिता का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए शिक्षा का विरोध करना कोई बुद्धिमत्ता न होगी यदि इस तरह का षड्यन्त्र किया गया तो राष्ट्र की बहुत बड़ी शक्ति का ह्रास हो सकता है।

पिछले वर्षों में नारी शिक्षा पर भी काफी बल दिया गया है। सफल गृहिणी के लिए शिक्षित होना नितांत आवश्यक है। उसके अभाव में परिवार में गृह-कलह, विवेकहीन-विवाद आरोप प्रत्यारोप वैमनस्य झगड़े होंगे और परिणाम होगा मानसिक दूरी। हाँ शिक्षित होने का यह अर्थ कदापि नहीं कि वे अपने कर्तव्यों को ही भूल जाए नई रोशनी के मोह में अपना घर, बच्चे पति समाज धर्म, और संस्कृति के अस्तित्व को ही भूल कर स्वच्छन्द वातावरण मे विचरण करें होटलों, महफिलों की रौनक बनें, विवेक और धर्म को हेय कहें, फैशन को ही जीवन का लक्ष्य मान बैठें अकर्मण्य बन जायें। अति आधुनिक बनने के मोह में अतीत का मजाक उड़ाना आदि एक भयंकर भूल ही होगी। नारी शिक्षा को नारी के अनुकूल बनाना होगा। गृह विज्ञान इस क्षेत्र में प्रशंसनीय कदम है।

शिक्षितों को स्वहित गौण कर देश भक्ति त्याग, कर्तव्य-निष्ठा को प्रमुखता देनी होगी। शिक्षकों को सच्चे अर्थों में निर्माता बनना होगा शिक्षार्थियों को जिज्ञासु तथा सत्यनिष्ठ तथा शिक्षा को स्व और परहित का अनुरूप विवेकी बनना होगा। देश की प्रगति के लिए

निकट भविष्य में इन्हीं कुछ परिवर्तनों की अपेक्षा है। शिक्षा साध्य नहीं साधन है साध्य है 'स्व-पर का कल्याण ।

परम्परा एवं सिद्धान्तों की कैद में मानव को बन्दी नहीं बनना है यदि ऐसा हुआ तो विकास पर कुठाराघात होगा, बढ़ने वाले कदम थम जाएंगे और वे परम्परा एवं सिद्धान्तों से उन्मुक्त हो स्वच्छन्द बन अच्छी बातों का भी विरोध करते चले जायेंगे। इसमें विवेक की अपेक्षा है। एक ही परम्परा सिद्धान्त एक के लिए ठीक हो सकता है, एक के लिए नहीं इन सब सामाजिक सिद्धान्तों में परिस्थितियों एवं समय का विवेक होना चाहिए, आग्रह नहीं, साध्य हो—मानव सुख शांति एवं राष्ट्रीय प्रगति।

आर्थिक नीति . देश की आवश्यकता के अनुरूप हो !

अर्थ जीवन निर्वाहन की अनिवार्य अपेक्षा है किन्तु जीवन नहीं। आज तक जितनी भी समस्याएं बनी हैं वहाँ विवेक का अभाव ही कार्य करता रहा है—कहीं साध्य को साधन मान लिया गया तो कहीं साधन को साध्य।

अर्थ को साध्य मान कर युद्ध हुए एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ, एक राज्य का दूसरे राज्य के साथ। पारिवारिक संघर्ष, वैयक्तिक वैमनस्य एव तनाव इन सबके मूल में निहित था और है अर्थ सम्पत्ति। सत्ता भी कारण रहा संघर्ष का किन्तु उसकी जड़ भी तो अर्थ पर ही आधारित रही है बिना सम्पत्ति वैभव अर्थ की सत्ता कौन चाहता !

इसी अर्थ के लिए हुए युद्ध ने विश्व में अर्थ की कमी की। करोड़ों की सम्पत्ति उपयोगी आवश्यक वस्तुएं नष्ट कर दी गई, जिनकी रक्षा से आज करोड़ों-करोड़ों गरीबों को रोटी और वस्त्र मिल सकता था इतना ही नहीं, रहने के लिए आवास एवं सुख-सुविधा के साधन मिल सकते थे वे सब नष्ट कर दिए गए। आज भी रक्षा सामग्रियों को जुटाने के लिए प्रत्येक देश का प्रतिवर्ष करोड़ों खर्च होता है और जब संघर्ष छिड़ जाता है तब जन धन और सम्पत्ति धन का नाश भी होता

है। द्वितीय महायुद्ध की विभीषिकाओं पर प्रकाश डालते हुए साप्ताहिक धर्मयुग ने लिखा है— महायुद्ध में मारे गए दो करोड़ से अधिक नौजवान अर्थात् बम्बई मध्यप्रदेश और बिहार राज्यों का सारा युवक समुदाय। हवाई हमलों में मारे गए डेढ़ करोड़ स्त्रियाँ, बालक और वृद्ध अर्थात् उड़ीसा राज्य की सारी जनसंख्या। गृहविहीन, निर्वासित या बन्दी पाँच करोड़ अर्थात् पाकिस्तान के सारे घर। निराश्रित होकर दुर्भिक्ष और बीमारी के शिकार पन्द्रह करोड़ अर्थात् १९१४ के बंगाल के अकाल में निराश्रितों की जनसंख्या का चालीस गुना। युद्ध पर खर्च किया गया पैसा यदि लोगों में बाँट दिया जाता तो दुनियाँ की २१० करोड़ की जनसंख्या में प्रत्येक स्त्री पुरुष को तीस हजार रुपए मिलते।

हड़ताल, तोड़-फोड़ एवं हिंसात्मक आन्दोलनों ने भी देश की सम्पत्ति को कम नुकसान नहीं पहुँचाया है। विद्यार्थी-असन्तोष कर्मचारी-आन्दोलनों ने अनेकों बार उग्र तोड़-फोड़मूलक कदम लेकर देश की धन धन सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाया है। खड़ी बसों को जला देना, रेल की पटरियों को तोड़ देना, डिब्बों को नुकसान पहुँचाना विद्यालय विश्व विद्यालय की इमारतों पर पत्थरों की वर्षा करना, कलाकृतियाँ चलचित्र गृह, व्यापारिक केन्द्र, रेस्ट्रां कलकारखाने गोदाम कुछ भी तो नहीं बच सके—इनके शिकार से। प्रतिवर्ष लाखों करोड़ों की सम्पत्ति का इस तरह ह्रास कर देना देश की आर्थिक समस्या को उग्र बनाना ही है। वे लोग जो देश के निर्माण म कुछ भी नहीं करते और यदि करते भी हैं तो उन्हें निर्मित सामग्री को नष्ट करने का क्या अधिकार है? इसे विचारों की विडम्बना ही कहना चाहिए। एक इमारत की दीवार बनती है व्यक्तियों के खून और पसीने के श्रम से ईंट से ईंट का जोड़कर अनेकों की सम्पति लगाने के बाद किन्तु नष्ट करदी जाती है क्रोध की अविवेकपूर्ण एक दृष्टि

में। इस बात से उस कलाकार को उस निर्माता को कितना दुःख होता होगा यह तो वे भुक्त-भोगी ही जानते होंगे।

देश की आर्थिक समस्याओं के हल में प्रथम ध्यान इन्हीं विषयों पर जाना चाहिए। निर्माण होना दूर की बात रही किन्तु निर्मित सामग्री का अन्त तो न किया जाय। स्वतन्त्रता का यह मतलब कदापि नहीं कि व्यक्ति घर फूंक कर तमाशा देखे अपनी मांग को मनवाने का और भी तरीका हो सकता है, किन्तु देश की सम्पत्ति नष्ट कर, देश सेवक क्रान्तिकारी का स्वांग भरने वाले देश के साथ द्रोह के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर रहे हैं।

देश की हर सम्पत्ति मकान कारखाना विद्यालय रेल बस, चल-अचल सम्पत्ति हमारी अपनी है। एक वैयक्तिक सम्पत्ति भी क्रम भेद से देश की ही तो सम्पत्ति है। व्यक्ति व्यक्ति भले हो उसकी सम्पत्ति पर उसका निजी अधिकार भले हो, किन्तु व्यक्ति देश का है, व्यक्ति की सम्पत्ति भी देश की है। व्यक्तियों के अपने मकान, कारखाने देश की ही जनता के काम आते हैं और देश के ही गौरव के प्रतीक होते हैं। फिर सामष्ठिक या वैयक्तिक विशेषणों को प्राप्त किसी भी सम्पत्ति को नष्ट करना या हानि पहुंचाना, देश को हानि पहुंचाना है।

आज हम संतति-निरोध की बात करते हैं, क्यों ? और यह इसीलिए कि विश्व की करोड़ों की सम्पत्ति प्रतिवर्ष नष्ट कर दी जाती है। आज की आर्थिक समस्याओं में वृद्धि न हो इसके लिए संतति निरोध एक अनिवार्य अपेक्षा बन गई है। एक व्यक्ति दो, तीन से अधिक बच्चों का पालन-पोषण, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति ठीक ढंग से नहीं कर पाता वर्तमान के संदर्भ में। यहाँ तर्क हो सकता है कि उस युग में जब एक ही व्यक्ति को सौ से भी अधिक पुत्र थे, वे क्या करते थे ? पिछले अध्याय में हम कह चुके हैं कि समय और परिस्थिति का सिद्धान्तों आवश्यकताओं पर बहुत बड़ा प्रभाव रहता है।

एक मकान यदि सौ व्यक्तियों को सुविधा देने की स्थिति में है यदि एक पिता के दस पुत्र हों प्रत्येक को बधू भी, संख्या बीस हो गई। अब यदि प्रत्येक को आठ पुत्र हों, तब तक तो मकान सुविधा देने की स्थिति में रहेगा किन्तु संख्या जैसे ही सौ से अधिक बढ़ेगी मकान वह सुविधाएं देने में समर्थ न होगा।

घर में एक कुर्सी है एक मेहमान के लिए। एक मेहमान आता है अपना स्थान लेता है, ठीक कुछ देर बाद दूसरा भी आता है, एक ही कुर्सी होने से दोनों एक से ही काम चला लेते हैं कष्ट तो होता है किन्तु काम चल जाता है। अब तीसरा मेहमान आता है यदि उसे भी कुर्सी पर स्थान देने का प्रयास किया जाय तो या तो कुर्सी को टूटना होगा, या फिर तीनों ही सुविधा से नहीं बैठ सकेंगे। यही स्थिति देश की भूमि और जनसंख्या की भी है।

भारत में जिस अनुपात से जनसंख्या बढ़ रही है उस अनुपात से साधन वस्तुओं का निर्माण एवं पैदावार नहीं बढ़ रही है। वस्तुओं का निर्माण बढ़ाया भी जा सकता है किन्तु भूमि कहाँ से बढ़ेगी। अस्तु अब भूमि के क्षेत्र में हम कुछ भी नहीं कर सकते हमें निश्चित ही जनसंख्या के क्षेत्र में कमी नहीं तो बढ़ोतरी, विकास को रोकना होगा। १७ वीं शताब्दी में भारतीय जनसंख्या १० करोड़ थी, वही १८ वीं शताब्दी में १५ करोड़ १६ वीं शताब्दी में ३४ करोड़ से अधिक और वर्तमान में ४८ करोड़ के करीब होगई, यह स्थिति देश के विज्ञ नागरिकों के लिए चिंता का विषय है।

सीमित क्षेत्र है हमारे देश का, सीमित साधन हैं देश में। खनिज पदार्थों का अक्षय भण्डार होने पर भी निकालने के साधन सीमित हैं। अधिक से अधिक जनसंख्या का कार्यक्षेत्र कृषि होने पर भौगोलिक कारणों से पैदावार सीमित है। यह सीमित शक्तियां असीमित बनेंगी, इसमें संदेह नहीं किन्तु यह भविष्य का विषय है। आज हमें जो

सोचना एवं करना है वह आज की सीमाओं के स्थितियों के एवं शक्तियों के अनुरूप। देश के निर्माण का प्रत्येक कदम देश की स्थितियों को ध्यान में रखते हुए उठे। हमारे सिद्धान्त हमारे देश की स्थितियों के अनुसार हों।

जनसंख्या समस्या का प्रभाव प्रत्येक वस्तु पर पड़ा, अनेक समस्याओं का निर्माण हुआ, इससे गरीबी, बेकारी भुखमरी, सामाजिक और राजनैतिक, समस्याओं ने भी जन्म लिया। डा० चन्द्रशेखर ने कहा—'The entire background of a nation's economic wellbeing depends upon successful tackling of the gigantic population problem'

यदि समय रहते इस समस्या का हल किया जा सका तो अनेकों आर्थिक समस्याओं का हल सहज हो जाएगा। इससे सब समस्याओं का हल भले न हो किन्तु यह भी निश्चित है कि बिना इसके हल के अन्य समस्याओं का हल नहीं हो सकता।

शिक्षा के विकास के साथ जनता ने निरोध के साधन अपनाए हैं एवं गत वर्षों में बढ़ती हुई संख्या पर प्रतिबन्ध भी लगा है किन्तु ऐसा हुआ शिक्षितों में ही। गरीब अशिक्षित इसे अधर्म का विषय ही मानते रहे। यही कारण है कि आज भी इस पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जा रहा है शहरों की अपेक्षा ग्रामीण संख्या तेजी से बढ़ रही है परिणाम होगा और अधिक गरीबी।

काम कम, करने वाले अधिक और नतीजा होता है काम नहीं मिल पाता। पण्डित नेहरू ने इसके दो विभाजन किए, एक वह वर्ग जिसे काम नहीं मिलता और दूसरा वह वर्ग जो काम करना नहीं चाहता। प्रथम समाज और राष्ट्र के चिंतन का विषय है और दूसरा स्वयं व्यक्ति के।

देश में कृषि के साधनों में वृद्धि की गई, कलकारखानों की

भीड़ लग गई, कागजी कार्रवाई ने दफ्तरों की बाढ़-सी आ गई मिलाकर बढ़े। फिर भी अनेकों बिना काम के बचे रहते हैं, नौकरी का एक ही विज्ञापन हजारों प्रत्याशियों की भीड़ को इकट्ठा कर देता है। इस तरह जब काम कम और करने वालों की संख्या अधिक होती है तो वे व्यक्ति जिन्हें काम नहीं मिलता बेकार होते हैं। वे निर्माण भले न करें निर्मित वस्तुओं का उपयोग तो करते ही हैं। एक मशीन का बेकार में पड़े रहना भी ठीक नहीं है जबकि वह बेकारी अवस्था में खर्च नहीं करवाती फिर व्यक्ति का जो निर्मित वस्तुओं का उपयोग करता रहता है, बेकार रहना किसी भी स्थिति में ठीक नहीं कहा जा सकता। ऐसा बेकार रहने वाला स्वयं जानता है, किन्तु कुछ मजबूरी भी काम करती हैं देश को इस मजबूरी का निदान करना होगा।

१ नवम्बर १६५२ को वर्धा में हरिजन सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए पण्डित नेहरू ने कहा था—'The prosperity of a nation is judged by the number of people who are employed. Unemployment is the bane of a nation

आज देश में अनेकों की संख्या में बेकार हैं। शिक्षित बेकारों की संख्या भी अशिक्षित बेकारों से कम नहीं हैं। अशिक्षित व्यक्ति तो फिर भी किसी न किसी काम में अपने को जोड़ लेता है, किन्तु शिक्षित व्यक्ति प्रतिष्ठा के अनुरूप काम चाहता है। हजारों की संख्या में कृषक-पुत्र कृषि छोड़कर नौकरी के चक्कर में अपने को बेकार अनुभव कर रहे हैं, यही स्थिति श्रमिक वर्ग की भी है। शिक्षा-पद्धति का दुष्परिणाम ही कहिये जिसने बेकारी को बढ़ाया ही है। लाखों, करोड़ों की सम्पत्ति प्रति वर्ष और वर्षों का समय शिक्षा पर लग रहा है और वह भी ऐसी शिक्षा पर जिसका कागजी ज्ञान के अतिरिक्त जीवन में कोई उपयोग नहीं। सामान्य शिक्षा के बाद जो ज्ञान व्यक्ति स्वयं प्रयत्न

से दूसरे कार्मों को करते हुए भी कर सकता है, उसी के लिए न मालूम कितने करोड़ों की सम्पत्ति एवं समय धन को नष्ट किया जाता है ?

टेक्नोलोजीकल मेकेनिकल मेडिकल शिक्षा का उपयोग अवश्य हो रहा है, अतिरिक्त उसके अनेकों शिक्षित बेकार हैं बेकारी की बीमारी को बढ़ने से रोकने के लिए शिक्षा को उपयोगी बनाना होगा कृषि, कला एवं श्रमोपयोगी। शिक्षा का लक्ष्य निर्माण होना चाहिए। मात्र मस्तिष्क ज्ञान मात्र बुद्धि पक्ष कुछ नहीं होता यदि वह देश के निर्माण में अपना कार्य पक्ष न जोड़ सके। आज शिक्षा में मस्तिष्क विकास पर बल दिया जाता है शरीर को गौण कर। पर भग्न बीमार कमजोर शरीर अपनी प्राप्त शिक्षा का भी उपयोग क्या कर सकेगा, इस पर विचार क्यों नहीं किया जाता ?

स्त्री शिक्षा पर भी देश की काफी सम्पत्ति लगती है सामान्य ज्ञान अवश्य मिलना चाहिए, उसके बाद उन स्त्रियों को जिन्हें नौकरी नहीं करनी है गृह-शिक्षा पकाना सिलाई बुनाई, शिशुपालन, वाटिका-निर्माण आदि विषयों की शिक्षा मिले तो देश के निर्माण में भी कुछ कार्य हो सकता है देश की आर्थिक स्थिति सुधार की ओर बढ़ सकती है और साथ ही पारिवारिक जीवन सुखी बन सकता है।

उसी तरह पुरुष शिक्षा भी यदि मात्र क्लर्की सिखाती है तो उसका क्या उपयोग ? देश को सीमित संख्या में इस तरह के लोग चाहिए फिर अनेकों का क्या किया जाय ? आज इन बेकारों के लिए बेकार के कामों का निर्माण किया गया है। देश में कागजी कार्य बढ़ गया है और काम कम हो रहे हैं—करोड़ों की सम्पत्ति कागजी फाइलों पर खर्च होती है। कागजी फाइलें आंकड़े एवं जानकारी अवश्य अपेक्षित है, किन्तु यही मुख्य बन जाय तो इसे दुर्भाग्य का विषय ही कहना चाहिए।

देश की सम्पूर्ण बीमारी की जड़ है औरों के अनुकरण में। पर

सला देश के रक्षक, निर्माता यह क्यों नहीं सोचते कि देश का निर्माण देश के अनुकूल स्थितियों के निर्माण से ही सम्भव है। शिक्षा दीक्षा, कार्य प्रत्येक को देश के अनुकूल बनना होगा। देश के लाखों-करोड़ों को जब भर-पेट रोटी नहीं मिलती हजारों को जब भीख माँगकर अपना पेट पालन करना होता है अनेकों को तन ढकने को पर्याप्त वस्त्र और रहने को आवास नहीं मिलता लाखों जब झुग्गी झोंपड़ी में या सड़क के किनारे निर्मित मकानों के आहतों में अपनी नींद काटते हैं तब देश का प्रत्येक पैसा भी चिन्तन के साथ खर्च होना चाहिए। अनिवार्य आवश्यकताओं का निर्माण पहले होना चाहिए, उसके बाद अन्य विषयों का किन्तु क्रम गलत दिशा में चल रहा है, पोथी-पत्रों की सुरक्षा, और कागजी कार्यालयों के निर्माण के लिए करोड़ों का सहज ही खर्च हो जाता है किन्तु अकाल पीड़ित क्षेत्रों में बाँध, नहर के निर्माण में उतना शीघ्र नहीं। देश का बच्चा भूखा मर जायगा, परन्तु अधिकारियों की तनख्वाह में कटौती नहीं होगी, शिक्षालय सभालय बनने रुकेंगे नहीं व्यापारियों के श्रम पर टैक्स बढ़ा कर द्रव्यों को मँहगा किया जायगा, किन्तु टैक्स एकत्र करने के विशाल भवनों का निर्माण अवश्य होगा। शिक्षालय, मन्दिर कल्याण मण्डपों के निर्माण में लाखों का चन्दा करने वाले एवं देने वाले सहज मिल जायेंगे किन्तु बाँध सड़क नहर, तथा गाँवों में कुए आदि के निर्माण में दान देने वाले कम मिलेंगे। भगवान और भगवान का आदर्श जन सेवा में है। यदि अकाल पीड़ित क्षेत्रों में व्यापारी एवं देश की सरकार कुओं की खुदाई, नहर निर्माण आदि में पैसा लगाए, तो भगवान के मन्दिर-निर्माण से किसी भी स्तर पर कम नहीं है। आज इस सम्पूर्ण मिशनरी को नई दिशा देने की अपेक्षा है।

इससे मेरा यह आशय कतई नहीं कि देवालय शिक्षालय सभालय, नहीं हों— हों अवश्य किन्तु अनिवार्य अपेक्षा को समझते हुए और या फिर आवश्यक निर्माण कार्यों की सम्पूर्ति के बाद।

देश के नागरिक की प्रथम आवश्यकता रोटी है। भारत जैसा कृषि प्रधान देश भी अनाज के लिए औरों पर निर्भर रहे—यह दर्द की बात है, किन्तु हो ऐसा ही रहा है। या तो अनाज का वितरण ठीक तरह से हो नहीं पाता, या अनाज की पैदावार कम है आबादी के अनुपात में। एक राज्य का अनाज दूसरे राज्य में नहीं पहुंच सकता बड़े कठोर नियम हैं, एक प्रान्त वाले भर-पेट खायें भोजों का आयोजन करें और एक प्रान्त को दो समय की रोटी तक न मिले।

प्राकृतिक कारणों से अकाल पड़ जाना सहज सम्भव है, किन्तु यदि अनाज के वितरण पर प्रान्तीय प्रतिबन्ध न हो तो शायद अकाल भी अपनी भीषणता को प्रकट न कर सके।

कृषि के क्षेत्र में नवीन उपकरणों की सुविधा को जुटाना होगा। गरीब किसानों को भी साधनों की सुविधा देनी होगी, और बदले में किसानों का और अधिक श्रम करके अनाज पैदा करना होगा बेकार भूमि को जोतना होगा। भूमि को चाहिए अच्छी जुताई, पानी और पोषण। यदि इस बात की सम्पूर्ति हम कर सके तो धरती फिर से सोना उगलने लगेगी। यह कहावत 'भारत सोने की चिड़िया थी यहाँ घी और दूध की नदियाँ बहती थीं' फिर से चरितार्थ हो या न हो किन्तु इतना अवश्य हो जायगा कि भारत कृषि प्रधान देश है और आहार में स्वनिर्भर प्रदेश। हमारा स्वाभिमान बना रह जायगा। और भला हमें चाहिए भी क्या ?

प्रत्येक बच्चे को पर्याप्त दूध मिल सके इसके लिए हमें पशुपालन को पुनः प्राथमिकता देनी होगी। मस्तिष्क का विकास ही सब कुछ नहीं, शरीर की स्वस्थता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। जब व्यक्ति मानसिक और शारीरिक दोनों पक्षों म विकसित एवं स्वस्थ हो तभी जीवन का सन्तुलन बना रह सकता है। इसके लिए गोरक्षा को बल

देना होगा। देश की बेकारी समस्या को दूर करने में इस तरह का पशु-पालन एक सहायक कदम हो सकता है।

आहार समस्या, बेकारी समस्या आवास समस्या, इन सबका एक साथ कुछ हल हो सकता है ऐसे निर्माण कार्यों से जो इन सबको एक साथ लाभ पहुँचा सकें। प्रत्येक नदी पर बाँध बने नहरें निकलें सड़क के दोनों ओर तथा उपयुक्त स्थानों पर अच्छी लकड़ी वाले पेड़ लगवाये जाएँ दूध देने वाले पशुओं का पालन बेकार भूमि की जुताई, खाद निर्माण, लघु उद्योग आदि।

अनाज के दुरुपयोग को भी रोकना होगा खाने के साथ जूँठन के रूप में अनाज को नष्ट करना गोदामों में कीड़ों और चूहों द्वारा अनाज को खा जाना इनके प्रति सतर्कता बरतनी होगी। यदि प्रत्येक व्यक्ति नित्य दोनों समय के भोजन के साथ एक ग्रास भोजन भी जूँठा डालता है तो इससे लाखों टन अनाज प्रति वर्ष नष्ट होता है। जिससे लाखों को भोजन मिल सकता है। अति मनुहार, अनिच्छा पर भी मेहमानदारी में अधिक भोजन करवाने की प्रवृत्ति को छोड़ा जाय। जरूरत के बिना खाना और खिलाना न तो स्वास्थ्य की दृष्टि से ही ठीक है और न आर्थिक दृष्टि से। 'खाना है जीने के खातिर न कि जीना है खाने के खातिर, इसलिए लाल बहादुर शास्त्री ने अनाज के प्रत्येक कण की उपयोगिता पर बल दिया। उन्होंने जो प्रति सोम वार एक समय का खाना छोड़ने की बात कही उसके पीछे यही भावना निहित थी। अधिक भोजन से जहाँ अनाज का दुरुपयोग होगा साथ ही अनावश्यक औषधियों का उपयोग भी बढ़ जायगा। इस तरह एक व्यक्ति जरूरतमंद के भोजन को स्वयं कर लेगा। लाखों बच्चे भोजन के अभाव में अपने जन्म को भी कोसेंगे। देश का बच पन ही यदि भूखा रहे तो उसका भविष्य क्या हो सकता है?

इसी तरह अन्य वस्तुओं का भी दुरुपयोग न हो यदि पुराने कपड़े

वितरण को भी रोकता है और आदर्श भी कहलाता है। खर्च पर सामाजिक बन्धन से पैसे का संग्रह होगा और उचित खर्च से पैसे का वितरण। इसलिए खर्च के विरोध की अपेक्षा उसका समर्थन करना ही राष्ट्रीय आर्थिक दृष्टि से अधिक ठीक होगा। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि व्यक्ति अतिव्ययी बन जाय अनावश्यक कार्यों में खर्च करे। व्यक्ति को अपनी स्थिति के अनुसार खर्च करना चाहिए उसके अतिरिक्त नहीं।

आज दिखावे में फैशन में दूसरों की बराबरी की होड़ में अनावश्यक प्रतिस्पर्धा चल पड़ी है। व्यक्ति का व्यय अपनी स्थिति के अनुकूल होना चाहिए, औरों के अनुकरण में नहीं। अनेकों पारिवारिक संघर्ष व गृह-कलह के पीछे अनावश्यक व्यय ही रहा है। अस्तु, खर्च में भी विवेक की अपेक्षा है।

पंचवर्षीय योजनाओं ने राष्ट्रीय आर्थिक स्तर को काफी उठाने का प्रयत्न किया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना १९५१ ५२ से १९५५ ५६ तक द्वितीय १९५६ ५७ से १९६०-६१ तक, तृतीय १९६१ ६२ से १९६५ ६६ तक एवं चतुर्थ १९६६ ६७ से १९७०-७१ तक के लिए नियोजित किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में मुख्य विषय था, बढ़ती हुई कीमतों को रोकना कच्चे माल की कमी की पूर्ति करना और विस्थापितों को पुनः बसाना। इससे कृषि तथा औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में प्रगति हुई।

द्वितीय योजना का लक्ष्य था देश में उद्योगों का विकास करना आर्थिक असमानता को दूर करना तथा रहन-सहन के स्तर को उठाना इससे भी काफी क्षेत्रों में पर्याप्त विकास हुआ।

तृतीय योजना का मूल लक्ष्य कृषि को बनाया गया जिससे देश खाद्यान्न में स्व निर्भर बन सके। साथ ही जनशक्ति के उपयोग की दृष्टि से ग्राम की सम्भावनाओं का विकास विद्युत जैसी मौलिक आवश्यकताओं पर बल दिया गया। इन सबकी सम्पूर्ति के लिए काफी

मात्रा में विदेशी ऋण लिए गये । देश में टक्सों को बढ़ाया गया । अब वह समय आ गया है अब देश को अपनी योजनाओं के लिए स्व निर्भर होना चाहिए । अति आयात भविष्य के लिए भार भी बन सकता है ।

पिछले वर्षों म भूमि-सुधार, वन-निर्माण मत्स्य-पालन, पशु-पालन के क्षेत्र में पर्याप्त ध्यान दिया गया है । सिंचाई के लिए हीराकुण्ड, भाखड़ा बाँध कोसी, रिहन्द बांध, नागार्जुन सागर तुगभद्रा चम्बल, राजस्थान नहर आदि योजनाओं का कार्य किया गया है । यह सब निश्चित ही राष्ट्रीय कृषि विकास में महत्वपूर्ण योग देंगे ।

उद्योगों की दृष्टि से टेरिफ कमीशन इण्डियन स्टैण्डर्ड इन्स्टीटयूट खादी-ग्रामोद्योग, सेंट्रल इंडिया रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑल इण्डिया हैंडीक्राफ्ट बोर्ड बैंगलोर कॉफी बोर्ड, कलकत्ता टी बोर्ड, कोट्टयम रबर बोर्ड एरनाकुलम कोयर बोर्ड जूट कमीशन आदि की स्थापना की गई जिन्होंने अपने क्षेत्र में निर्माण का प्रयत्न किया । सिन्द्री फर्टिलाइजर्स नेशनल इन्स्ट्रूमेन्ट्स हिन्दुस्तान केबल्स, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, नेशनल न्यूज प्रिन्ट एण्ड पेपर मिल्स फर्टिलाइजर कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया, इटिग्रल कोच फैक्टरी हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट चितरंजन लोकोमोटिव, हिन्दुस्तानकेमीकल्स • हिन्दुस्तान हाउसिंग फक्टरी इण्डियन ड्रग्स एण्ड फार्मेस्युटिकल्स, हिन्दुस्तान फोटो फिल्म मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी हिन्दुस्तान स्टील, बोकारोइस्पात, शिपिंग कार्पोरेशन, आयल इण्डिया, हैवी इलैक्ट्रीकल्स इण्डियन रिफाइनरीज, टाटा आयरन हिन्दुस्तान ऐरोनाटिक्स आदि उद्योगों ने राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि की ।

अपेक्षा है प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने आपको किसी न किसी काम में जोड़ने की और न व्यक्ति जो किसी काम में लगे हैं और अधिक श्रम तथा निष्ठा से काम करने की । निर्मित वस्तुओं का दुरुपयोग और उन्हें नष्ट करने की दुष्प्रवृत्ति को रोकना होगा । राष्ट्रीय आर्थिक विकास मे हम सबका सामष्टिक योग हो आर्थिक-नीति देश की आवश्यकता के अनुरूप हो—यही आज की अपेक्षा है ।

राजनीति को व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठना होगा !

'Let our object be, our country, our whole country and nothing but our country And by the blessing of God, may that country itself become a vast and splendid monument not of oppression and terror but of wisdom, of peace and of liberty upon which the world may gaze with admiration forever'

वे पुरखा जिनका लक्ष्य देश था, देश की समृद्धि था— जिन्होंने देश की आन, शान और रक्षा के लिए अपने प्राणों तक का उत्सर्ग किया था। जिनके खून से भारत की चप्पा-चप्पा भूमि सींचित है जिनकी विद्या और शिक्षा प्रणाली से संसार आकर्षित था, जिनके श्रम और निष्ठा से देश सोने की चिड़िया थी जिनके अनुनय, भक्ति से देश में घी और दूध की नदियाँ बहती थी , जिनके शासन से देश का बच्चा बच्चा शान्ति की नींद सोता था जिनकी अहिंसक क्रान्ति विश्व के लिए शांति और सुख के पथ का मार्ग-दर्शन बन सकी जहाँ राम और कृष्ण जैसे जननायक, महावीर और बुद्ध जैसे धर्मनेता, अशोक और विक्रमादित्य जैसे धर्म न्यायशासक, बापू, पटेल, सुभाष, नेहरू, शास्त्री राजेन्द्रबाबू और जाकिरहुसैन जैसे जन-नेता, प्रताप शिवाजी, टीपू

झांसी की रानी, कित्तूर चिन्नम्मा, भगतसिंह, माधाद रानाडे, सावरकर, कटबम्मन जैसे बलिदानी विवेकानन्द रामकृष्ण परमहंस और अरविंद जैसे दार्शनिक दयानन्द सरस्वती राममोहन राय बसवण्णा और देवांशसम्भूत जैसे समाज सुधारक, तिलक गोखले, मालवीय, विद्यासागर सब्रह्मण्यम भारती जैसे भ्रांत-द्रष्टा देवेन्द्रनाथ, रविन्द्रनाथ कर्वे जैसे महर्षि जगदीशचन्द्र, विश्वेश्वरय्या और भामा जैसे वैज्ञानिक, तानसेन गालिब जैसे गायक सूरदास, कबीर रहीम', मरसीमेहता मी । ज्ञानदेव तुकाराम तुलसी चेरुस्सेरी नम्बूदरी कुमार माशन, पम्प, रन्न जन तिरुवल्लुवर, मन्मथभट्ट वाल्मीकि, व्यास कालिदास जसे भक्त कवि दिवेदी गुप्त, प्रसाद प्रेमचन्द वर्मा, निराला नम्बीयार, सर्वज्ञ, बंकिमचन्द्र जैसे साहित्यकार हो गए—यह विगत और विगत के लोग भारतीय वभवपूर्ण गौरव के प्रतीक हैं।

जहाँ देश के अतीत का इतना बडा आदर्श उसके इतिहास के औज्ज्वल्य को प्रखर बना रहा है—वहीं देश में आगजनी, तोड़-फोड़ हिंसात्मक-आन्दोलन, प्रांत-प्रांत की सीमा के लिए लड़ाई भाषाई विरोध साम्प्रदायिक वैमनस्य कुर्सी के लिए उल्टे-सीधे दाव-पेंच आदर्शों के नाम पर कानून की अवहेलना देशसेवा के नाम पर स्वार्थों की सिद्धि देश के धवल जीवन पर काले धब्बे हैं। अन्ध-स्वार्थों की कालिमा में फँसे मानव के लिए देश के गौरव का प्रश्न स्व-अहम् के बाद है जीवन मे अनावश्यक आवश्यकताओं—विषयों के लिए संघर्ष हो रहा है, निर्माणक विषयों को भूल कर सार्वजनिक मंच से नित्य नए एव आदर्शपूर्ण विचारों की आवाज लगाई जाती है आचार को गौणकर प्रामाणिकता और अनुशासन के अभाव की बाढ़ आ रही है, दानवीय शक्तियाँ मानवीय शक्तियों को परास्त कर रही हैं मार्ग स्वतंत्र चिन्तन का नहीं, गुलाम विचारों के अनुकरण का बन रहा है पूजा आदर्शों एव सही सिद्धान्तों की नहीं भीड़ की हो रही है कदम-कदम

पर ममता, इन बन्धनों की दासता से आक्रान्त है। क्या स्वतन्त्रता के संघर्ष हजारों-लाखों बलिपथियों के खून का यही मूल्य हम चुकाना था स्वतन्त्रता के २२ वर्षों के बाद भी देश की राजनैतिक स्थिति एवं एकता लड़खड़ा रही है स्वतन्त्रता, स्वच्छन्दता बन गई है निर्माण के काय सही दिशा में नहीं होकर विपरीत दिशा में हो रहे हैं आवश्यक आवश्यकताओं की नहीं अनावश्यक आवश्यकताओं की सम्पूर्ति हो रही है, शारीरिक गुलामी न सही मानसिक दासता के बन्धन आज भी हमें जकड़े हुए हैं अपने ही अस्तित्व, भावनाओं संस्कृति, सभ्यता से हमारा विश्वास उठ-सा रहा है, निर्माण कम योजनाएं अब रही हैं कर्मठता नहीं, आश्वासन मिल रहा है स्थिति प्रत्येक भारतीय के तात्कालिक चिन्तन का विषय है।

हमने जब देश के स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी हमने जब देश की सीमा रक्षा के युद्ध किए तब तब हमने एक शक्ति और एक भारत होकर सब कुछ किया अपने देश के लिए। तब हम सच्चे भारतीय थे, सही अर्थों में 'भारतीय' प्रान्तीयता, भाषा साम्प्रदायिकता, राज नैतिक पार्टियाँ हमें विभाजित नहीं कर सकी थीं। देश इन भिन्नताओं से ऊपर था महत्वपूर्ण था, भगवान था हमारा और यही कारण था हमारी स्वतन्त्रता प्राप्ति का विदेशी आक्रमणों से देश की रक्षा का। किन्तु दुःख तो इस बात का है कि स्वतन्त्रता के बाद और अधिक भावात्मक एकता के स्थान पर हम विभाजित होते चले जा रहे हैं— राजनैतिक पार्टियाँ प्रान्त, भाषा धर्म, और जाति की रेखाओं में इसे राष्ट्रीय भावात्मक एकता के लिए खतरा ही कहना चाहिए।

पंडित नेहरू ने कहा था— A nation s formost duty is to strengthen and preserve its freedom This is our yard-stick to measure every other activity If we place our state, our language, our group above our country, the

nation will be destroyed और इसीलिए उन्होंने कहा हमें शक्तिशाली राष्ट्र की आवश्यकता है। एक ऐसे राष्ट्र की जहाँ सब एक बनकर रहें—भाई बहिन की तरह रहें। स्वतन्त्रता प्राप्त करना अलग बात है और उसकी रक्षा दूसरी बात। उसे प्राप्त करने के लिए जो संघर्ष करना पड़ा उसकी रक्षा के लिए भी उतनी ही सतर्कता एवं कार्यशीलता की अपेक्षा है। इस संदर्भ में उन्होंने एक बार कहा—'We have to pay a price for preserving and maintaining our freedom Do not think freedom once won has come to stay We have to go on paying the price all the time to keep it और उसकी रक्षा के लिए उन्होंने कहा— Every thing that seperates is bad every thing that joins is good

उनकी भावना थी प्रत्येक देशवासी अपने देश के लिए अपनी सेवा दें, बिना किसी भय एवं पुरस्कार प्राप्ति की भावना के। किन्तु आज स्वार्थ मुख्य बन गया है। स्वतन्त्रता के बाद राजनैतिक दलों का मुख्य लक्ष्य सरकार सत्ता को प्राप्त करना बन गया है। ठीक भी है बिना सत्ता के वे अपने सिद्धान्तों को विशाल पैमाने पर जारी नहीं कर सकते थे किन्तु उद्देश्य सिद्धान्त और सेवा का नहीं रह गया है वह मात्र 'सत्ता', मद और प्रतिष्ठा का बन चुका है। सत्ता को हथियाने, प्राप्त करने के साधन भी अपनाए जा रहे हैं जो अनुशासन, देश निर्माण और आदर्श के विरुद्ध है व्यक्ति के लिए देश से बढ़कर दल और दल से बढ़कर स्वयं का हित बन गया है दल बदल की आग इसी वृत्ति का परिणाम है। जब तक अपना पद सुरक्षित रहता है, अपना स्वार्थ सधता है व्यक्ति दल के अनुशासन को अपना धर्म मानता है, किन्तु जैसे ही स्वार्थ को धक्का लगता है व्यक्ति दल को धक्का पहुँचाने में नहीं हिचकता दल तो दूर देश को हानि पहुँचाने में भी नहीं डरता। आज देश में अनेक राजनैतिक दल हैं, एक दल में अनेक दल

है अपनी मान्यता के और इसका लक्ष्य सत्तारूढ़ दल को गिराना रह गया है। विधायकों में असभ्यता होते सुनते हैं, शोर और आवाज होते सुनते हैं यह सब देश निर्माणकों के कदम नहीं हो सकते।

लगता है अतीत के आदर्शों का भारतीय नेता अपने यथार्थपूर्ण आदर्शों से भटक रहा है सेवापरक निस्वार्थ भावना का स्थान स्वार्थ ले रहा है। किस प्रकार अपना अर्थ साधा जाय सत्ता पर अपना अधिकार पाया जाय, अपनी कुर्सी सुरक्षित रहे—अनेकों का जीवन क्रम बन चुका है। दोष मात्र नेताओं का नहीं, शासकों का नहीं समष्टि का है। हमारा तन्त्र ठीक हो आचार एवं विचारों की एकरूपता पर आधारित हो कर्मशील हो, आचरण की उसमें प्रतिभा हो, नैतिकता उसका लक्ष्य हो इसके लिए जनतन्त्र, जनता-जनार्दन को ठीक होना होगा। जो भी तन्त्र हमें उपलब्ध है या होगा वह हमसे भिन्न नहीं, हमारी ही वृत्तियाँ उसमें होंगी—आखिर वह समाज का ही तो एक अंग है। अस्तु समग्र रूप से नैतिक मूल्यों की स्थापना की अपेक्षा है—समग्र मानव समाज को नई दिशा की अपेक्षा है और पहल करनी चाहिए देश के कर्णधार, रक्षक और सेवक नेताओं को। गीता में कहा गया है—'यद्यदाचरति श्रेष्ठ स्तत्तदेवेतरो जन' आज प्रत्येक अपने हक, अधिकार की बात करते हैं किन्तु क्यों वे अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्य को भूल जाते हैं? सत्ता प्राप्ति और सत्ता के भाव से जब गाँव और गाँव के प्रत्येक दरवाजों तक को खटखटाया जाता है, वही प्रत्याशी चुनाव के बाद गाँव का रास्ता तक क्यों भूल जाते हैं? देश की स्थिति उसके नागरिकों की आवश्यकता का ज्ञान विदेशी पत्र पाठन विधानसभा के वातानुकूलित बन्द कमरों में बैठे रहने से मोटर-गाड़ियों द्वारा की गई यात्रा तथा प्रवचन-मंचों से दिए गए भाषणों भवनों के उद्घाटन से नहीं होगा, उसके लिए मिलना होगा जन साधारण से, फिरना होगा गाँव और शहर में द्वार

द्वार पर, अपनी आँखों से देश की स्थिति को देखना होगा और उन सब से ऊपर उठ कर अपने चिन्तन को गुलामी से मुक्त कर भारतीय स्थितियों के अनुकूल बनाना होगा। देश का निर्माण मात्र योजनाओं से, विदेशी कर्ज से राज्यों की संख्या बढ़ाने से नहीं होने वाला है तबतक निर्माण की बातें बातें मात्र हैं—निर्माण देश का उच्च आचरण सेवाभावी नेताओं निष्पक्ष मार्ग दर्शकों के जीवन से होने वाला है।

अपने जाति धर्म और साम्प्रदाय के आधार पर मत मांगने वाले देश में जनतन्त्र निर्माण के क्रम में अपना योग दे रहे हैं, या देश को अनेकों विभाग में बाँटने की सामग्री जुटा रहे हैं ? श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा था कि 'जातिवाद और क्षेत्रवाद के इन विषैले सर्पों को समय रहते समाप्त नहीं किया गया तो हम अपना लोकतन्त्र ही नहीं, स्वातन्त्र्य एव स्वाधीन व्यक्तित्व भी खो बैठेंगे। दुःख है आज वही विषैला सर्प राष्ट्रीय एकता को चुनौती दे रहा है।

देश की एकता, विकास, निर्माण को मध्य कर संविधान द्वारा जो चुनाव और उसके द्वारा सरकार बनाने की बात थी सरदार वल्लभ भाई पटेल के परिश्रम स जो देश अखण्ड एक गणराज्य बन सका महात्मा गांधी, नेहरू और शास्त्री के आदर्श से वहाँ भावात्मक एकता देश की आत्मा बनी वहीं प्रांतीय साम्प्रदायिक संकुचित कर्मों की वृत्ति दर्द की ही बात है। जिसका दुष्परिणाम वर्तमान को भुगतना पड़े या न पड़े, आने वाले भविष्य को भुगतना ही होगा। प्राचीन रियासतें एवं राजा-पद्धति को समाप्त कर हमने दूसरी शासन-पद्धति को जन्म दिया है। एक समय था संघर्ष होते थे एक राज्य का दूसरे राज्य के साथ, राजाओं की शासन वृद्धि की भावना एवं सत्ता के लिए। आज देश अपना है, सत्ता में जब स्थान नहीं मिलता जनता को उकसाया जाता है एक प्रान्त के दो प्रान्त बनाने के लिए, ताकि वे सत्ता पर

आसीन हो सकें। इस वृत्ति को यदि शीघ्र रोका नहीं गया तो यह फिर टुकड़ों में बंट जायगा। वे राजाओं की रियासतें भले न हों इन शासकों की सत्ताएं होंगी।

चुनाव ही जनता के पास एक माध्यम है—सुयोग्य नेताओं सेवकों की सेवा प्राप्ति का। अस्तु, चुनाव के अवसर पर अयोग्य, स्वार्थी प्रत्याशियों को स्थान न देकर निस्वार्थ, सजक उन्मुक्त चिन्तकों को शासन-तन्त्र में स्थान दिया जाय।

जाति, धर्म, साम्प्रदायिकता के नाम पर एक ही राष्ट्र के दो राष्ट्र बना दिए गए। जिस शान्ति और व्यवस्था के लिए यह किया गया—वैसा हुआ नहीं। बल्कि यह हमारी शांति और व्यवस्था के लिए एक सन्देह बन कर रह गया। सीमा पर नित्य नए खतरे बनते हैं देशीय शक्ति ने दृढ़ता के साथ इन खतरों का मुकाबला किया है, फिर भी देश की रक्षा-पंक्ति को और अधिक मजबूत बनाना होगा। एक ओर चीन दूसरी ओर पाकिस्तान के आक्रमक इरादे अभी तक शांत नहीं हो पाए हैं। इसलिए जल थल एवं नभ सेनाओं को और अधिक बलवती बनाना होगा तदनुरूप साधनों को भी जुटाना होगा।

देश को मात्र बाहरी सीमाओं से उतना खतरा नहीं जितना आन्तरिक संघर्षों से है प्रान्तीय सीमाओं के विवादों से है। शान्ति, प्रगति व्यवस्था के नाम पर प्रान्तों का विभाजन हो रहा है। पंजाब और आसाम का विभाजन हो गया। पंजाब से पंजाब और हरियाणा राज्य की स्थापना हुई और आसाम से आसाम और नागालैण्ड की। इधर इन दिनों आन्ध्र में तेलंगाना विभाजन की बात भी बल पकड़ रही है केरल में अलग मुस्लिम जिले की मांग मैसूर विभाजन राजस्थान विभाजन की मांग चण्डीगढ़ को पंजाब और हरियाणा में मिलाने का संघर्ष। लगता है देश के नागरिकों को बाहरी सीमाओं के विषय में आवश्यकता हो या न हो आन्तरिक सीमाओं मैसूर, महाराष्ट्र,

आन्ध्र-मद्रास पंजाब राजस्थान बंगाल-आसाम आदि की चिन्ता विशेषरूप से है। एक ही देश के वासी एक ही देश की भूमि को इस विभाजन की रेखाओं में देखें एवं उसके लिए उलझ जाएं एक दूसरे से यह क्षोभ का ही विषय हो सकता है। एक राष्ट्र के हम वासियों नागरिकों के मन की सीमा इन सीमाओं के नाम पर बढ़ती चली गई है। सीमाओं का निर्माण नक्शे को अंकित करने के लिए हो सकता है, हृदय को रेखाओं में बांटने के लिए नहीं।

मोरारजी देसाई ने कहा 'पहले तो भाषावार राज्य बनाए गए यही गलती हुई। उसके बाद भाषा का आधार छोड़कर नागालैण्ड बनाया गया, यह भी गलती थी। मैंने उनका विरोध किया था, किन्तु एक गलती होने के बाद बार-बार उसी गलती को दोहरा कर नए-नए छोटे-छोटे राज्यों में देश को बांटना एक दम गलत होगा।'

छोटे-छोटे राज्य आखिर किस समस्या का हल करेंगे—यही एक प्रश्न है? स्वनिर्भर रह नहीं सकते उन्हें केन्द्र पर भार बनना होगा। पद बढ़ेंगे, कार्यालय बढ़ेंगे स्वतन्त्र व्यवस्थाओं में खर्चों की वृद्धि होगी। देश के अर्थ का बहुत बड़ा भाग इस तरह व्यवस्था के लिए ही खर्च कर देना—प्रस्तुत परिस्थितियों म बुद्धिमत्ता नही होगी। फिर छोटे-छोटे राज्य प्रकारान्तर से व्यवस्था को जटिल ही बनाते हैं और देश की एकता को भी। यहाँ तक केन्द्र-शासित राज्यों की अपेक्षा नहीं है, उन्हें निकट के राज्यों के साथ मिला लिया जाय। इससे देश की व्यवस्था एव आर्थिक स्थिति को भी बल मिलेगा। देश की शक्ति का विकास होगा। डा० अम्बेदकर ने देश को मात्र पाँच हिस्सों मे बाँटने की बात कही थी, उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम तथा मध्य। उनका कहना था कि केवल शासकीय सुविधा आधार होना चाहिए। पर किसी ने तब यह बात नहीं मानी। सन् १९६० में भाषावार प्रान्त बना दिए गए। छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर एक राज्य बना

दिए जाय और इस तरह यदि राज्यों की संख्या घटाई जाय तो वह राष्ट्र के हित का ही कदम होगा। हां इतना अवश्य है कि जनता में इस बात को अपनाने की इच्छा जागृत करनी होगी। राज्यों के विभाजन में दोष सरकार का नहीं जनता का है जन शक्ति के सामने अनिच्छा होने पर भी सरकार को झुकना पड़ा है सरकार को कई निर्णय परिस्थितियों की विवशता म भी लेने होते हैं। जन शक्ति को अपने विचारों को सही और राष्ट्रीय हित का मोड़ देना चाहिए, आवेश आवेग और अनुकरण, निर्णयात्मक कदमों के हेतु नहीं बनें।

केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध-नियमों म भी परिवर्तन की अपेक्षा है। केन्द्र और राज्यों में शक्ति अधिकारों का विभाजन लोकतन्त्र का दुर्भाग्य ही है। केन्द्र राज्य के हाथ शक्ति देकर स्वय उस एकात्मक शक्ति को अपने पास नहीं रख सका है और परिणाम स्वरूप एक ही देश की नीतियों कार्य प्रणालियों में अन्तर देखा गया है। दुर्गापुर इस्पात कारखाना और काशीपुर गन फैक्ट्री के मामले में केन्द्र और राज्य के आपसी तनावपूर्ण स्थितियों के लिए एक दूसरे पर दोषारोपण इसका एक उदाहरण है। दुर्गापुर इस्पात कारखाना ठीक ढग से काम नहीं कर रहा है केन्द्र सरकार का कहना है कि राज्य सरकार अनुशासन हीनता के लिए श्रमिकों को उकसा रही है और राज्य सरकार का कहना है कि इस मामले में केन्द्र का हस्तक्षेप अनावश्यक है और हालात कुछ भी हों इससे राष्ट्रीय निर्माण-शक्ति को नुकसान पहुँचा है। देश की इन सब विभिन्न इकाइयों को जोड़ने का उनमें एकसूत्रता स्थापित करने का कार्य केन्द्र का ही है और इसके लिए आवश्यक है—केन्द्र का शक्तिशाली होना केन्द्र के पास शक्तियों का केन्द्रिकरण।

प्रान्तीयता की आग इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि देश का भीतरी भाग प्रान्तीय सेनाओं का गढ़ बन चुका है। शिवसेना, सचित सना,

भीमसेना आदि संगठनों का निर्माण इन्हीं प्रान्तीय भावनाओं के पोषण में हुआ है और इनका लक्ष्य भी अपना प्रान्त अपने प्रान्त के लोग रहा है। प्रान्तों के नाम पर एक ही राष्ट्र की जनता आपस में इतनी खिंचती चली गई है कि आज दूसरे का अपने प्रान्त में रहना तक पसन्द नहीं किया जाता। इस अराजकतापूर्ण कदम ने मनों की दूरी में, मानव-मानव में भेद की रेखा खींचली है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के २२ वर्ष बाद भी राष्ट्रीय एकता एक प्रश्न चिन्ह [?] ही बना रहे—यह चिन्तन का विषय है। एक प्रान्तीय दूसरे प्रान्तीय को विदेशी समझें, प्रान्त प्रान्त वालों के लिए भाषा-साम्प्रदायिकता के नाम पर देश बँटता चला जाय यह वृत्ति राष्ट्रीय एकता की नींव को हिलाने वाली ही हो सकती है। पिछले महीनों हमनें राष्ट्रध्वज और राष्ट्रीय संविधान के अपमान की बातें सुनीं, इस तरह के कदम देश के साथ गद्दारी से बढ़कर और कुछ नहीं। आज भारत को जितना खतरा अन्दर का है उतना बाहर का नहीं। हम यह क्यों भूल जाते हैं कि राष्ट्र जनता की इकाई है— राष्ट्र की एकता को काटने वाली प्रवृत्ति व्यक्ति को काटने की वृत्ति है राष्ट्र को कमजोर बनाना अपने आपको कमजोर बनाना है। राष्ट्र की एकता को नीलामी पर लगाकर कोई भी राज्य कोई भाषी कोई भी व्यक्ति सुख की नींद सो नहीं सकता, समृद्धि और विकास को पा नहीं सकता।

डा सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने १२ जनवरी १९५४ को इण्डियन हिस्टोरिकल रिसर्च सोसाईटी बम्बई के सिलवर जुबली समारोह में देश की एकता के लिए सावधान करते हुए कहा—'We must put down the forces that impair our national unity, retord our economic progress whether these forces come from the rich or the poor the capitalist or the labourer and endeavour to raise standards of efficiency and honesty

in our administration. National unity, economic reconstruction and good government are the needs of the hour I hope that these ends will be kept in view by our leaders and people. डा० राजेन्द्र प्रसाद ने मद्रास के एक वक्तव्य में राष्ट्रीय एकता पर बल देते हुए कहा था— We in this country, have to preserve our own identity we can do so only if we keep this entire country together, Then alone shall we be able to demonstrate that strength which is necessary to keep his independence and keep it in a position in which it will be able to protect it self and the people and help other countries as well in time of need It is therefore necessary that we should realise the great value of political unity and preserve it as best as we can I am anxious that people shuold also realise their duty to maintain, protect and preserve the hard won independence That is the primary duty of every indian today

श्री लाल बहादुर शास्त्री ने देश की एकता को देश की शक्ति का आधार स्तम्भ बताया।

कांग्रेस अध्यक्ष श्री एस० निजलिंगप्पा के अनुसार इस तथ्य के बारे में दो मत नहीं हो सकते हैं कि राष्ट्रीय प्रगति भले ही वह आर्थिक हो अथवा सामाजिक, जिसे प्राप्त करने में हम सब जुटे हैं राष्ट्रीय एकता के बिना प्राप्त नहीं की जा सकती। उन्होंने तो देश की एकता के लिए यहाँ तक कहा 'If linguistic provinces threatens national unity, they should be abolished'

भारत के वर्तमान शिक्षा मंत्री डा० वी०के०आर०वी० राव

का कहना है कि 'राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर इस समय सोचना नितान्त आवश्यक है ।' उन्होंने अहिंसा तथा पारस्परिक सहिष्णुता पर बल दिया है । भारत के श्रम, रोजगार और पुनर्वास मंत्री श्री जयसुख लाल हाथी का लिखना है कि 'पिछले कुछ समय से देश के विभिन्न भागों में उठ रही साम्प्रदायिक प्रादेशिक तथा विभाजनकारी शक्तियाँ शांति के वातावरण को भंग कर रही हैं । राष्ट्रीय हितों को ताक पर रख कर अपने क्षुद्र हितों की पूर्ति के लिए विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों ने हिंसात्मक आन्दोलनों को प्रारम्भ किया है । असंख्य बलिदानों के बाद प्राप्त की गई इस स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए इन विरोधी तत्वों का सामना किया जाना चाहिए और राष्ट्रीय एकता की सुरक्षा के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए ।' केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्री डा० चन्द्रशेखर के मतानुसार हमारे बहुत से झगड़ों का जन्म क्षेत्रीय प्रेम और संकुचित विचारधारा से होता है ।' राष्ट्रीय एकता के लिए समाधान देते हुए भारत के गृहमंत्री श्री यशवन्तराव चह्वाण का कहना है 'राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में सबसे प्रमुख कार्य यह है कि जन साधारण में ऐसी योग्यता तथा इच्छा शक्ति को जागृत किया जाय जिससे कि लोग देश की नीतियों और समस्याओं पर राष्ट्रीय हित की दृष्टि से उपयुक्त चिन्तन कर सकें ।' राष्ट्र की जनता को निर्देशन प्रेरणा देते हुए उनका प्रत्येक भारतीय से कहना है कि सर्व प्रथम राष्ट्रीय हित की चिन्ता की जाय तब प्रेम, धर्म तथा भाषा के प्रश्न हमारे लिए गौण हो जाएँगे । भारत सूचना एवं प्रसार उपमंत्री श्रीमती नन्दिनी सत्पथी की शिकायत है कि एक बार पुनः समाज विरोधी तत्व देश में अपना सिर उठाने का प्रयत्न कर रहे हैं । वस्तुतः वे देश की शांति तथा एकता को नष्ट करना चाहते हैं । क्या उन्हें यह सब करने दिया जायेगा ? समाधान देते हुए उनका विश्वास है कि सतर्क सरकारी व्यवस्था तथा कानून को मानने वाले शान्ति

प्रेमी, देशभक्त तथा विश्वसनीय भारतीय नागरिक यह सब नहीं होने देंगे।' भारत सरकार के संचार तथा संसदकार्य के राज्यमन्त्री श्री आई० के० गुजराल का कहना है कि विघटनकारी तत्वों के साथ संघर्ष किया जाये और पारस्परिक छोटे-छोटे प्रश्नों को हटाकर राष्ट्रीय विकास की ओर ध्यान दिया जाये—यह आज बहुत जरूरी है राष्ट्रीय एकता तथा सामञ्जस्य इसी माध्यम से स्थापित किए जा सकते हैं।' राजस्थान के राज्यपाल श्री हुकमसिंह ने अपने विचार देते हुए कहा है 'पिछले कुछ समय से हमारे लोकतंत्र के क्षितिज पर राष्ट्र विरोधी गतिविधियाँ उभरी हैं और जिन्हें देख कर हम सब चिन्तित हो रहे हैं। हम में से प्रत्येक विचार-शील व्यक्ति का कर्तव्य है कि इस प्रकार की गतिविधियों को समाप्त करने के लिए सामूहिक रूप से कुछ हल निकालने में सहयोग दें नहीं तो आगामी वर्षों में जो स्थितियाँ उत्पन्न होंगी वे हमारे लिए हानिकारक होंगी। राष्ट्रीय एकता का स्थान सर्वोपरि स्थान रखता है इसे हमें भुलाना नहीं चाहिए।' हरियाणा के राज्यपाल का विचार है 'गांधी जी ने हमें 'एकता तथा प्रेम' का पाठ पढ़ाया था। परन्तु हमने सम्भवतः पारस्परिक विद्वेष, घृणा तथा संघर्ष का मार्ग चुन लिया है। यद्यपि हम राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं पर उस राष्ट्रीय एकता में दरारें पड़ती जा रही हैं और सर्वत्र अव्यवस्था फल रही है। जातिवाद, साम्प्रदायिकता प्रान्तीयता आदि विभाजनकारी तत्व देश में सक्रिय दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उनका कहना है इससे निराश न होकर मार्ग ढूंढना चाहिए। जम्मू-काश्मीर के मुख्य मन्त्री श्री जी० एम० शादिक कहते हैं कि 'राष्ट्रीय एकता हम सबको प्रिय हो। जो लोग राष्ट्र विरोधी कार्यों में लगे है वे देश के शत्रु हैं। राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्र निर्माण के प्रयत्न स्तुत्य हैं। हम सबको मिलकर इस कार्य के लिए प्रयत्न करना चाहिए जिससे कठिनता से प्राप्त यह स्वतन्त्रता बनी रह सके। मैसूर के मुख्यमंत्री श्री वीरेन्द्र पाटिल ने अपने एक वक्तव्य में कहा—'भारतीय

का सबसे बड़ा धर्म यदि कुछ हो सकता है तो वह राष्ट्र-सेवा राष्ट्रीय हित ही है ।

सर्वोदयी विनोबा भावे ने-संकीर्ण वृत्तियों से ऊपर उठ कर राष्ट्रीय एकता और विश्व-मानव के एकता की बात कही है । नैतिकता के क्षेत्र में मानव धर्म की इच्छा रखने वाले आचार्य श्री तुलसी ने समाज का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहा है 'एकता सबको प्रिय है पर व्यक्तिगत सीमाएं उससे अधिक प्रिय हैं , इसीलिए वे बहुत बार एकता को चुनौती देती रहती हैं । अपनी जाति, अपने सम्प्रदाय, अपनी भाषा, अपने प्रान्त और अपने वर्ग के लिए आदमी सर्वोच्च हित को गौण कर देता है—यह अपनी शाखा की सुरक्षा के लिए मूल को उखाड़ने जैसी नासमझी है ।

हमारे राष्ट्र निर्माता बापू का स्वप्न था एक ही राष्ट्र में एक ही झण्डे के प्रति जिनकी अगाध निष्ठा है उनमें आपस में यथेष्ट मेल जोल रहा है जो भारत को तन-मन से एक राष्ट्र मानते और विश्वास करते हैं उनके यहां अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक का कोई प्रश्न नहीं उठ सकता । सभी को समान अधिकार समान सुविधा, हमारे सपनों का राष्ट्र धर्म-निरपेक्ष तो हो ही इसे होना होगा गणतान्त्रिक और उसकी इकाइयों के बीच रहेगा पूर्ण समन्वय । उनके स्वप्नों के भारत का रूप था स्वयं में और ईश्वर में आस्था का, प्रेम-सौहार्द-भाईचारे की भावना के साथ जीने का और उन्होंने बताया था द्वेष पूर्ण भावना का अर्थ होगा स्वयं में और ईश्वर में अनास्था ।'

देश के नागरिक का सबसे बड़ा धर्म प्रमुख कर्तव्य जीवन की सार्थकता यदि कुछ हो सकती है तो वह राष्ट्र-सेवा, राष्ट्र के निर्माण कार्यों में अपना योग विनाशक तत्त्वों से अपने को न जोड़ना, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता, वर्गीयता को देश से बढ़कर नहीं मानना और देश की एकता से विमुख नहीं होना । देश की प्रतिष्ठा के लिए, देश के गौरव

के लिए हमें अपने अल्प स्वार्थों की वृत्ति को छोड़ना होगा। विचारों को संकीर्णता से ऊपर उठाना होगा।

भाषा के नाम पर एक ही देश के लोग आपस में उलझ जाए, भागजनी तोड़-फोड़ और हिंसात्मक वृत्तियों तक उतर आए, यह लज्जा की ही बात हो सकती है। एक साधारण बुद्धिवाला व्यक्ति भी सोच सकता है—एक देश की एक सम्पर्क भाषा के विषय में। आज हम विदेशों से सम्पर्क के लिए English अंग्रेजी को अपना सकते हैं तो राष्ट्रीय सम्पर्क के लिए हिन्दी को अपनाने में क्या आपत्ति हो सकती है? जब हम शेक्सपीयर और मिल्टन, ब्राउनिंग और वर्ड्सवर्थ को याद रख सकते हैं तो वाल्मीकि और व्यास, कालिदास और भारवि, तुलसी और सूर, कबीर और रहीम कृष्ण और राम को याद रखने में क्या आपत्ति हो सकती है? जब हम डैडी, ममी अंकल को याद रख सकते हैं तो पिता माँ और चाचा याद रखने में क्या आपत्ति हो सकती है? जब हम INDIA कह सकते हैं तो भारत कहने में क्या आपत्ति हो सकती है?

समस्या वास्तव में भाषा की नहीं, मनों की है। समस्या भाषा की होती तो शायद हम विदेशी भाषाओं को नहीं अपनाते, विदेशी पोशाक और विदेशी सभ्यता को भी नहीं अपनाते, किन्तु बात यह नहीं है। भाषा के आधार पर बने राज्यों के बाद हमारे मन संकुचित बन गए। तब से अब तक हम आपस में लड़ते रहे, झगड़ते रहे हैं अपने सीमित पक्ष का समर्थन करते हुए। संकुचित भावना ने हमारा ध्यान मात्र अपनी भाषा पर संजोये रखा। प्रान्तीय भावना बलवती थी—हिन्दी भाषों ने हिन्दी का समर्थन किया और दूसरों ने अपना। चूँकि हिन्दी का आग्रह बहुमत का था न्यायसंगत था, हिन्दी बहुतों की भाषा थी अतः उसे परास्त करने के लिए अंग्रेजी का सहारा लिया गया और उसे राष्ट्रीय भाषा बनाने की बात कही गई। अंग्रेजी

यदि राष्ट्र की भाषा रही होती, यदि वह बहुमत की भाषा होती यदि उसे राष्ट्र भाषा बनाना राष्ट्र के गौरव के अनुकूल होता तो शायद गांधीजी हिन्दी का समर्थन नहीं करते और संविधान हिन्दी को राष्ट्र भाषा घोषित नहीं करता।

अनेक राज्यों के बाद भी देश का एक केन्द्र बना संविधान बना एक राष्ट्र-ध्वज बना राष्ट्र-गान बना फिर एक राष्ट्र भाषा के होने से क्यों कर शिकायत है? हिन्दी को राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा मान लेने से यह कदापि ध्वनित नहीं होता कि देश की दूसरी भाषाएँ किसी भी दृष्टि से कम सम्पन्न हैं। मधुरता और साहित्य की दृष्टि से दक्षिण भारत की भाषाओं की सम्पन्नता किसी से कम नहीं है। सब भाषाएं समान हैं। इनमें न तो कोई छोटी है और न कोई बड़ी। सबका अपना-अपना महत्व और सम्पन्नता है। इन्हीं सम्पन्न उन भाषाओं में से एक को बहुतों की भाषा को राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा बनाया गया है, हमारे ही द्वारा उचित निर्णय के बाद। उसे चर्चा का विषय बनाना भावात्मक एकता की दृष्टि से ठीक नहीं कहा जा सकता।

भाषा की समस्या वस्तुतः जटिल नहीं है उसे जान-बूझकर जटिल बनाया गया है। निहित स्वार्थ राष्ट्रीय-स्वार्थ से टक्कर ले रहे हैं। प्रत्येक अपने-अपने पक्ष का समर्थन कर रहा है और समर्थन में दूसरे को उकसा रहा है। पिछले वर्षों हमने देश भाषा के नाम पर हिंसात्मक आन्दोलन। देश के कुछ भागों में इस प्रश्न को लेकर जो उग्र स्थिति बनी हड़तालें हुईं तोड़ फोड़ मूलक कार्य हुए वह दर्दनाक घटनाएँ इतिहास के पुनरावृत्ति की नहीं। अपने ही राष्ट्र की राष्ट्र भाषा के प्रसार में हमें साम्राज्यवाद (Hindi Imprerialism) की बू दिखाई देने लगी है—इसे राष्ट्रीय एकता का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए। देश की तीस करोड़ जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा हिन्दी का अन्य अहिन्दी भाषियों से सीखना का

निवेदन यदि हिन्दी साम्राज्यवाद है तो फिर दो प्रतिशत भारतीयों की भाषा चालीस करोड़ पर लादने का प्रयास क्या होगा ? बात तो यह है कि हम 'हिन्दी' को कानून से अपनाने की बात ही क्यों सोचें हमें उसे राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक मान कर अपनाना चाहिए। इसके साथ ही हिन्दी समर्थकों को भी हिन्दी थोपने की वृत्ति न रख कर उसका पर्याप्त प्रेमपूर्ण प्रचार करना होगा। क्योंकि जबरदस्ती से किसी को भी विरोध ही हो सकता है। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने एरनाकुलम में वक्तव्य देते हुए कहा था—'There is no question of imposing the language of North on the South As a matter of fact, it is the will of all people that we should have one common language We have always felt that no nation can express its soul unless it speaks through its own language

कहा जाता है हिन्दी अविकसित भाषा है। अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाने का यह कोई राष्ट्रीय तर्क नहीं हुआ। कल आप कहेंगे भारत अविकसित देश है, दूसरे देशों की तुलना में; और इसलिए आप भारत को अपना राष्ट्र मानने के लिए तैयार नहीं। इस तरह की दलीलें राष्ट्र का हित नहीं साध सकतीं। हिन्दी कैसी भी है (हालांकि वह अविकसित नहीं) देश की है। वह विकसित सम्पन्न बनेगी तो हमारी ही निष्ठा और श्रम से। सौ सौ साल पुरानी केवल पाँच छ करोड़ लोगों की भाषा सारे संसार में छा सकती है, तो तीस बत्तीस करोड़ लोगों की भाषा क्या भारत में भी सम्पर्क का काम नहीं दे सकती ? माना कि हिन्दी में कुछ कमियाँ हैं व्याकरण सम्बन्धी। किन्तु सत्य यह है कि जितनी भी भाषाएं हैं वे किसी न किसी कमी से अछूती नहीं हैं। मानव होने के नाते हमें मानवीय भाषाओं से ही काम लेना होगा। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—'I am anxious that in all our

work we should give great importance to the cultivation of a common language for India.' इनका वक्तव्य था कि सरकार अवश्य इसके लिए प्रयास करेगी किन्तु जनता को भी अपना स्वतन्त्र प्रयास अवश्य करना चाहिए। दक्षिण में हिन्दी के प्रचार पर सन्तोष व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा—'It is really a matter for congratulation that you in the South have taken to this work so seriously and I have reason to hope that this problem will be solved. By the end of the 15 year which the constitution has given to us We shall be in a position to conduct all our business through the medium of our own language समाधान तो यह है कि भारत की समस्त भाषाओं के साहित्य रस की भक्ति ही जिसकी धमनियों में प्रवाहित हो रही है, भारतीय संस्कृति के स्पन्दन ही जिसके हृदय की धड़कनें हैं, भारतीय गौरव एकता ही जिसकी आत्मा है उस हिन्दी को एक भाषा ही नहीं राष्ट्रीय एकता का दृढ़ सूत्र माना जाना चाहिए राष्ट्रीय आत्म गौरव की प्राञ्जल प्रतिमा मानना चाहिए।

अंग्रेजी से किसी का कोई विरोध नहीं होना चाहिए, न विश्व भाषा अपनाने में संकोच। वस्तुतः किसी भाषा से विरोध न हो। साथ ही आज शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रान्तीय भाषाओं के प्रयोग का आग्रह बढ़ रहा है —वह जहाँ ठीक है, वहाँ वह भविष्य में राष्ट्रीय एकता के लिए घातक भी सिद्ध हो सकता है। अंग्रेजी का स्थान हिन्दी को लेना है। यदि वह स्थान उसे न देकर इस विरोध में हम भविष्य के चिन्तन से विमुख रहकर प्रान्तीय भाषाओं को ही राज्य के प्रत्येक कार्य और शिक्षा का माध्यम बना देंगे तो इससे प्रान्तीयता बढ़ेगी, भविष्य के शिक्षितों को अपने राज्य की ही भाषा का ज्ञान होगा। इस तरह सीमा रेखा और अधिक गहरी हो जाएगी। इन सबका समाधान ही त्रि-भाषा

निवेदन यदि हिन्दी साम्राज्यवाद है तो फिर दो प्रतिशत भारतीयों की भाषा चालीस करोड़ पर लादने का प्रयास क्या होगा ? बात तो यह है कि हम हिन्दी को कानून से अपनाने की बात ही क्यों सोचें हमें उसे राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक मान कर अपनाना चाहिए। इसके साथ ही हिन्दी समर्थकों को भी हिन्दी थोपने की वृत्ति न रख कर उसका पर्याप्त प्रेमपूर्ण प्रचार करना होगा। क्योंकि जबरदस्ती से किसी को भी विरोध ही हो सकता है। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने एरनाकुलम में वक्तव्य देते हुए कहा था—'There is no question of imposing the language of North on the South As a matter of fact, it is the will of all people that we should have one common language We have always felt that no nation can express its soul unless it speaks through its own language

कहा जाता है हिन्दी अविकसित भाषा है। अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाने का यह कोई राष्ट्रीय तर्क नहीं हुआ। कल आप कहेंगे भारत अविकसित देश है, दूसरे देशों की तुलना में, और इसलिए आप भारत को अपना राष्ट्र मानने के लिए तैयार नहीं। इस तरह की दलीलें राष्ट्र का हित नहीं साध सकतीं। हिन्दी कैसी भी है (हालांकि वह अविकसित नहीं) देश की है। वह विकसित सम्पन्न बनेगी तो हमारी ही निष्ठा और श्रम से। मौ सौ साल पुरानी केवल पाँच छः करोड़ लोगों की भाषा सारे संसार में छा सकती है, तो तीस बत्तीस करोड़ लोगों की भाषा क्या भारत में भी सम्पर्क का काम नहीं दे सकती ? माना कि हिन्दी में कुछ कमियाँ हैं व्याकरण सम्बन्धी। किन्तु सत्य यह है कि जितनी भी भाषाएं हैं वे किसी न किसी कमी से अछूती नहीं हैं। मानव होने के नाते हमें मानवीय भाषाओं से ही काम लेना होगा। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—'I am anxious that in all our

work we should give great importance to the cultivati of a common language for India' इनका वक्तव्य था सरकार अवश्य इसके लिए प्रयास करेगी किन्तु जनता को भी अप स्वतन्त्र प्रयास अवश्य करना चाहिए । दक्षिण में हिन्दी के प्रचार सन्तोष व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा—'It is really a matter congratulation that you in the South have taken to tl work so seriously and I have reason to hope that tl problem will be solved. By the end of the 15 y which the constitution has given to us We shall be in position to conduct all our business through the mediu of our own language. समाधान तो यह है कि भारत की सम भाषाओं के साहित्य रस की शक्ति ही जिसकी धमनियों में प्रवाहित रही है, भारतीय संस्कृति के स्पन्दन ही जिसके हृदय की धड़कनें भारतीय गौरव एकता ही जिसकी आत्मा है उस हिन्दी को एक भा ही नहीं राष्ट्रीय एकता का दृढ़ सूत्र माना जाना चाहिए राष्ट्रीय आ गौरव की प्राञ्जल प्रतिमा मानना चाहिए ।

अग्रेजी से किसी का कोई विरोध नहीं होना चाहिए, न विर भाषा अपनाने में संकोच । वस्तुतः किसी भाषा से विरोध न हो । सा ही आज शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रान्तीय भाषाओं के प्रयोग का आ बढ़ रहा है —वह जहाँ ठीक है वहाँ यह भविष्य में राष्ट्रीय एकता लिए घातक भी सिद्ध हो सकता है । अग्रेजी का स्थान हिन्दी को लेन है । यदि वह स्थान उसे न देकर इस विरोध में हम भविष्य के चिन्त से विमुख रहकर प्रान्तीय भाषाओं को ही राज्य के प्रत्यक कार्य औ शिक्षा का माध्यम बना देंगे तो इससे प्रान्तीयता बढ़ेगी भविष्य शिक्षितों को अपने राज्य की ही भाषा का ज्ञान होगा। इस तरह सीम रेखा और अधिक गहरी हो जाएगी। इन सबका समाधान ही त्रि-भाष

पूर्ण है। हिन्दी अनिवार्य विषय रहे—मातृ भाषा शिक्षा का माध्यम हो सकती है, अंग्रेजी ऐच्छिक विषय। इससे भाषाओं के अध्ययन का भार बढ़ सकता है किन्तु यह भार अपेक्षित है। स्वतन्त्रता का तकाजा यही है कि हम लगातार स्वतन्त्र बने रहने का प्रयत्न करें— अपने आपको भुला देना स्वतन्त्रता की कीमत नहीं। जागरूकता इसी में है कि देश का गौरव बना रहे। 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति का मूल!'

भाषायी विरोध वैमनस्य जिस तरह संघर्ष का कारण बना है और उससे राष्ट्रीय भावात्मक एकता की जो हानि हुई है इससे बढ़कर राष्ट्रीय एकता को आघात साम्प्रदायिक दंगों से हुआ है। अभी-अभी गुजरात में हो रही वारदातें साम्प्रदायिक भावना के नाम पर खून की होली भगवान महावीर बुद्ध, अशोक सम्राट् और महात्मा गांधी के इस अहिंसा के देश में हिंसा विश्व को शान्ति का मार्ग बताने वाले देश की दुखद घटना है। स्वतन्त्रता के बाद भी साम्प्रदायिकता कहीं कहीं अपना रंग दिखाने में नहीं चूकती। विदेशी शक्तियां जो इस तरह देश में कलह और वैमनस्य का मुख्य कारण बनती हैं, देश को उनसे सतर्क रहना चाहिए। जिस स्वतन्त्रता को हम सबने मिलकर प्राप्त किया वही आपस में संकीर्ण साम्प्रदायिक उलझनों में उलझ कर देश की एकता तक को खतरे के कगार पर खड़ा करदें—इससे बढ़कर दानवीय कृत्य क्या हो सकता है?

'मजहब नहीं सिखाता आपस में हमको लड़ना,
हिन्दी हैं हम वतन यह हिन्दोस्तां हमारा।

डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा—'The existance of various religions communities and languages in India should not come *in way of its solidarity*

५ अगस्त १९५५ को दुर्गापुर के अपने वक्तव्य में चुनौती देते हुए उन्होंने कहा—'There is a natural tendency to get used

to evils that have been long with us the spirit of castes, of provincial jealousies and communal rivalries. If they are allowed to perpetuate themselves, if we do not fight them, our future will not be bright

पण्डित नेहरू ने ११ अगस्त १६५१ को राज्यसभा में हो रही चर्चा में कहा—'I want to deal with the communal spirit in India, the communal spirit of the Hindus and Sikhs more than that of Muslims I want this House to realise that this spirit will stand in the way of our progress and weaken us अहमदाबाद, बड़ोदा आदि क्षत्रों में हो रहे साम्प्रदायिक दगों को शान्त करने के लिए मोरारजी भाई देसाई का अनशन एक शांतिमय कदम है। आशा है देश के लोग भविष्य में इस तरह की घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं करेंगे।

प्रान्त भाषा वर्ग व्यक्ति के स्वार्थों को लेकर हो रहे तोड़-फोड़ हिंसात्मक आन्दोलन देश की जन-धन समय शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं। दिल्ली में सौ कर्मचारियों को जीते जलाने के प्रयास की घटना हमने सुनी दुर्गापुर कारखाने में विद्रोह से हुए नुकसान की कहानी मद्रास में हिन्दी विरोध और अन्य समयों म विद्यार्थियों द्वारा तोड़-फोड़ आग आदि की घटनाए, अभी-अभी बेंगलूर विद्यार्थी आन्दोलन में विद्यालयों की तोड़-फोड़ दिल्ली में बसों को आग अहमदाबाद जनता एक्सप्रेस को रोक कर मार काट हैदराबाद और आन्ध्र क अन्य क्षेत्रों में तोड़-फोड़ इन दर्दनाक घटनाओं का कोई अन्त नहीं है। २४ सितम्बर क पत्र म भिवण्डी में आगजनी और छुरेबाजी की घटनाए इम्फाल में पुलिस की गोली अहमदाबाद म कर्फ्यू उठाते ही हिंसक घटनाओं का दौर शुरू'। चण्डीगढ़ क लिए विवाद के तीर्थंकर देखने को मिले। सारा देश आज अनैतिक अमानवीय अराष्ट्रीय

वृत्तियों से बस रहा है और जमा रहा है देश का नागरिक ही । देश की समता की नियमितता के लिए जो कानून बना है, आज व्यक्ति कानून को ही अपने हाथ लेने का प्रयास कर रहा है । दस की हजारों करोड़ों की सम्पत्ति का प्रतिवर्ष इस तरह विनाश, हजारों की मृत्यु, वर्षों का समय बेकार में नष्ट हो रहा है । यह वृत्तियां निश्चित ही राष्ट्र-द्रोह की वृत्तियां हैं । कोई भी व्यक्ति, किसी भी स्थिति में यदि राष्ट्र की सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाए तो उसे राष्ट्रीय अपराध माना जाना चाहिए । जन इच्छा से ऊपर अनुशासन भी कोई चीज होती है—यह बात देश रक्षा, निर्माण एवं गौरव के लिए सिखानी होगी ।

घर में फूट हो तो दुश्मन के घर गुमान बरसता है । घर में एकता हो तो शत्रु कितना भी ताकतवर क्यों न हो, उसे परास्त ही होना पड़ता है । भारत की यही विशेषता थी, और यही कारण है—

> सदियों रहा है दुश्मन दूरे जहां हमारा
> बाकी मगर है अब तक नामो निशा हमारा
> कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी

देश की भिन्नता में भी एकता बनी रहनी चाहिए । जिस तरह विशाल जलधि में अनेक नदियां समन्वित हो जाती हैं अपने भेद को खोकर, अनेक रंग होने पर भी इन्द्र धनुष एक ही होता है । देश को भी एक बने रहना है और देश वासियों को इसके लिए मैत्र । देश का हित हमारे व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर हो ।

> यह वह भारत है जिसकी धरती पर, नैतिकता उगती थी ।
> इसके वक्षःस्थल पर ही शुभ्र चांदनी खिलती थी ।।
> मानव ही स्वर्णिम मानव को करता था साकार यहाँ ।
> जगत पूज्य वह भारत अब हा ! जाता है किस ओर कहाँ ?

हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि हमारी स्वतन्त्रता की कहानी चन्द लोगों के बलिदान की ही नहीं अपितु समग्र भारतीय जनता

के सहकार, सहयोग और बलिदान की कहानी है। हमारे देश की रक्षा देश का निर्माण देश के गौरव की लाज और देश की स्वतन्त्रता को बनाए रखना भी हमारे सामूहिक सहकार पर निर्भर है। कौन राज्य करता है—इससे अन्तर नहीं पड़ता यदि देश का प्रत्येक नागरिक अपने कर्तव्य से विमुख न हो। सरकार को जनता के सहयोग की अपेक्षा है और जनता को नेक नेताओं की। राजनीति रामनीति बने। साम्प्रदायिक, प्रान्तीय, वर्गीय भाषीय, वैयक्तिक संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठा जाए। राष्ट्रहित ही हमारा धर्म हो और मानव मानव में प्रेम हमारा लक्ष्य ! हमारा प्रत्येक चिन्तन और कदम माँ भारती के हित में हो वर्तमान की स्थितियों का उसमें विवेक भूत का उसमें अनुभव और भविष्य की आशा उसमें निहित हो !

जय माँ, जय भारती !